

Chapter अठारह

जम्बूद्वीप के निवासियों द्वारा भगवान् की स्तुति

इस अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने जम्बूद्वीप के विभिन्न वर्षों एवं प्रत्येक में पूजित भगवान् के अवतारों का वर्णन किया है। भद्राश्ववर्ष का प्रधान शासक भद्रश्रवा है। वह तथा उसके अनेक सेवक हयग्रीव नामक अवतार की सदैव पूजा करते हैं। प्रत्येक कल्प के अन्त में, जब अज्ञान नामक असुर वैदिक-ज्ञान को चुरा ले जाता है, तो भगवान् हयग्रीव प्रकट होकर उसको संरक्षित रखते हैं। फिर वे यह ज्ञान ब्रह्माजी को प्रदान करते हैं। हरिवर्ष नामक स्थल में परम भक्त प्रह्लाद महाराज नृसिंह भगवान्

की आराधना करते हैं। (नृसिंह भगवान् के प्राकट्य का वर्णन *श्रीमद्भागवतम्* के सातवें स्कन्ध में मिलता है)। प्रह्लाद महाराज का अनुसरण करते हुए हरिवर्ष के सभी निवासी नृसिंह भगवान् की पूजा करते हैं और उनकी प्रेमाभक्ति में तत्पर रहने का वर माँगते हैं। केतुमालवर्ष नामक भूभाग में श्रीभगवान् (भगवान् हृषीकेश) कामदेव के रूप में प्रकट होते हैं। ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मीजी तथा वहाँ रहने वाले देवता-गण अहर्निश उनकी सेवा में लगे रहते हैं। भगवान् हृषीकेश सोलह अंशों में प्रकट होते हैं और समस्त उत्साह, बल तथा प्रभाव के स्रोत हैं। यह जीवात्मा का सबसे बड़ा दोष है कि वह सदैव भयभीत रहता है किन्तु श्रीभगवान् की कृपामात्र से उसका सारा भय जाता रहता है। अतः भगवान् को ही ईश्वर के रूप में सम्बोधित किया जा सकता है। रम्यक वर्ष नामक स्थल में मनु तथा समस्त वासी आज भी मत्स्यदेव की आराधना करते हैं। मत्स्यदेव जिनका स्वरूप पूर्ण सतोगुणी है सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक एवं नियामक हैं, अतः वे इन्द्र समेत समस्त देवताओं के भी निदेशक हैं। हिरण्यमय-वर्ष में भगवान् विष्णु ने कच्छप (कूर्म मूर्ति) रूप धारण कर रखा है और वहाँ वे (*अर्यामा*) तथा अन्य समस्त वासियों द्वारा पूजित हैं। इसी प्रकार उत्तरकुरुवर्ष नामक खण्ड में भगवान् श्रीहरि ने शूकर रूप धारण कर रखा है और इसी रूप में वे वहाँ के निवासियों की सेवाएँ ग्रहण करते हैं।

इस अध्याय की सारी सूचनाएँ वही मनुष्य ठीक से समझ सकता है जो भगवान् के भक्तों की संगति करता है। इसलिए शास्त्रों की संस्तुति है कि मनुष्य को चाहिए कि भक्तों की संगति करे। यह गंगा के तट पर बसने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। विशुद्ध भक्तों के हृदयों में समस्त सद्भाव एवं देवताओं के सभी श्रेष्ठ गुण वास करते हैं। किन्तु जो भक्त नहीं हैं उनके हृदयों में ऐसे गुण नहीं रह सकते क्योंकि भगवान् की माया से मोहित हैं। भक्तजनों का अनुसरण करके ही यह जाना जा सकता है कि श्रीभगवान् ही एकमात्र पूजनीय श्रीविग्रह हैं। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि इस विचार को स्वीकार करे और ईश्वर की आराधना करे। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—“समस्त वैदिक शास्त्रों के अध्ययन का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करना है।” यदि समस्त वैदिक शास्त्र पढ़ लेने के बाद परब्रह्म के प्रति सुप्त भगवत्प्रेम जाग्रत नहीं होता तो मनुष्य को यह समझना चाहिए कि उसका सारा श्रम व्यर्थ रहा। उसने केवल अपना समय गँवाया। श्रीभगवान् के प्रति आसक्ति न होने से वह इस भौतिक जगत में आकर केवल पारिवारिक जीवन में व्यस्त रहता है।

अतः इस अध्याय की यही शिक्षा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह पारिवारिक जीवन से निकल कर एकान्त भाव से भगवान् के चरणकमलों की शरण ले।

श्रीशुक उवाच

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्रवर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी बोले; तथा च—इसी प्रकार (जिस प्रकार इलावृत-वर्ष में शिवजी संकर्षण की पूजा करते हैं); भद्र-श्रवा—भद्रश्रवा; नाम—नामक; धर्म-सुतः—धर्मराज के पुत्र; तत्—उससे; कुल-पतयः—कुल के मुखिया; पुरुषाः—समस्त वासी; भद्राश्र-वर्षे—भद्राश्रवर्ष नामक भूखण्ड में; साक्षात्—प्रकट रूप में, स्वयं; भगवतः—श्रीभगवान्; वासुदेवस्य—वासुदेव का; प्रियाम् तनुम्—अत्यन्त प्रिय रूप; धर्म-मयीम्—समस्त धार्मिक नियमों का निदेशक; हयशीर्ष-अभिधानाम्—हयशीर्ष (हयग्रीव भी कहा जाता है) नामक भगवान् के अवतार; परमेण समाधिना—परम समाधि द्वारा; सन्निधाप्य—समीप आकर; इदम्—यह; अभिगृणन्तः—कीर्तन करते हुए; उपधावन्ति—पूजा करते हैं।

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—धर्मराज के पुत्र भद्रश्रवा भद्राश्रवर्ष नामक भूखण्ड में राज्य करते हैं। जिस प्रकार इलावृतवर्ष में भगवान् शिव संकर्षण की पूजा करते हैं उसी प्रकार भद्रश्रवा अपने सेवकों तथा राज्य के समस्त वासियों समेत वासुदेव के स्वांश हयशीर्ष की पूजा करते हैं। हयशीर्ष भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं और वे समस्त धार्मिक विधानों के निदेशक हैं। गहन समाधि में स्थित भद्रश्रवा तथा उनके सेवक भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं और सावधानी पूर्वक उच्चारण करते हुए निम्नलिखित स्तुतियों का कीर्तन करते हैं।

भद्रश्रवस ऊचुः

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भद्रश्रवसः ऊचुः—शासक भद्रश्रवा तथा उसके पार्षद बोले; ओम्—हे ईश्वर; नमः—सादर नमस्कार है; भगवते—श्रीभगवान् को; धर्माय—समस्त धार्मिक विधानों के स्रोत; आत्म-विशोधनाय—भौतिक दूषण से शुद्ध करने वाले को; नमः—नमस्कार करते हैं; इति—इस प्रकार।

राजा भद्रश्रवा तथा उसके घनिष्ठ सेवक इस प्रकार स्तुति करते हैं—इस भौतिक जगत में बद्धजीव के चित्त को शुद्ध करने वाले, समस्त धार्मिक विधानों के आगार भगवान् को हमारा नमस्कार है। हम उन्हें बारम्बार सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : मूढ़ संसारी व्यक्ति यह नहीं जान पाते कि वे प्रकृति के नियमों द्वारा किस प्रकार पग-पग पर नियंत्रित और दण्डित किये जा रहे हैं। वे बार-बार जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के प्रयोजन को

जाने बिना यह मान बैठते हैं कि वे भौतिक जीवन की बढ़ावस्था में परम सुखी हैं। फलतः भगवद्गीता (७.१५) में भगवान् कृष्ण ने ऐसे संसारी व्यक्तियों को मूढ़ कहा है— *न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः*। ये मूढ़ यह नहीं जानते कि यदि वे पवित्र होना चाहते हैं, तो तप और संयम द्वारा भगवान् वासुदेव (कृष्ण) की पूजा करें। यही पवित्रता मानव जीवन का ध्येय है। यह जीवन अन्धाधुन्ध इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं मिला। मनुष्य-जीवन पाकर प्रत्येक प्राणी को अपने को पवित्र बनाने के लिए कृष्णभावनामृत में संलग्न करना चाहिए— *तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेत्*। यह अपने पुत्रों के प्रति राजा ऋषभदेव का उपदेश है। मनुष्य जन्म पाकर हर व्यक्ति को सभी प्रकार के तपों के द्वारा अपने को पवित्र बनाना चाहिए। *यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्*। हम सभी सुख की खोज में रहते हैं, किन्तु अज्ञानवश हम यह नहीं जान पाते कि वास्तव में अबाध सुख क्या है। अबाध सुख ब्रह्म सौख्य कहलाता है। यद्यपि इस भौतिक जगत में हमें कुछ तथाकथित सुख प्राप्त हो सकता है, किन्तु यह क्षणिक होता है। मूर्ख भौतिकतावादी इसे नहीं समझ सकते। अतः प्रह्लाद महाराज निर्देश करते हैं— *माया-सुखाय भरमुद्रहतो विमूढान्*—क्षणिक भौतिक सुख के लिए ये मूढ़ बड़े-बड़े प्रबन्ध करते हैं और इस तरह जन्म-जन्मातर दिग्भ्रमित रहते हैं।

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं

घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।

ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं

निर्हत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अहो—अरे; विचित्रम्—आश्चर्यजनक; भगवत्-विचेष्टितम्—भगवान् की लीला; घ्नन्तम्—मृत्यु; जनः—व्यक्ति; अयम्—यह; हि—निश्चय ही; मिषन्—देखकर भी; न पश्यति—नहीं देखता; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; असत्—भौतिक सुख; यर्हि—क्योंकि; विकर्म—वर्जित कार्य; सेवितुम्—उपभोग करते हुए; निर्हत्य—जलाकर; पुत्रम्—पुत्रों का; पितरम्—पिता को; जिजीविषति—दीर्घायु की इच्छा करता है।

अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि मूर्ख संसारी अपने सिर पर नाचती मृत्यु की ओर भी ध्यान नहीं देता। यह जानते हुए भी कि मृत्यु अटल है, वह उसके प्रति उदासीन एवं लापरवाह रहता है। चाहे उसके पिता की मृत्यु हो, अथवा पुत्र की मृत्यु क्यों न हो, वह उसकी सम्पत्ति का उपभोग करना चाहता है। प्रत्येक दशा में वह अर्जित धन से किसी की परवाह किये बिना सांसारिक सुख का उपभोग करने का प्रयत्न करता है।

तात्पर्य : भौतिक सुख का अर्थ है आहार, निद्रा, मैथुन तथा सुरक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होना। इस संसार में भौतिकतावादी व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के इन चार साधनों के लिए ही मृत्यु की भी परवाह न करके जीवित रहना चाहता है। पुत्र अपने पिता की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति का उपभोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करता है। इसी प्रकार यदि किसी में पुत्र की मृत्यु होती है, तो पिता उसकी सम्पत्ति का उपभोग करता है। कभी-कभी वह पिता पुत्र की विधवा के साथ संभोग करता है। जितने भौतिकतावादी व्यक्ति हैं, वे ऐसा ही आचरण करते हैं। इसीलिए शुकदेव गोस्वामी का कथन है, “श्रीभगवान् की इच्छा से घटने वाली भौतिक सुख की ये लीलाएँ कितनी विचित्र हैं!” दूसरे शब्दों में, भौतिकतावादी व्यक्ति सभी प्रकार के दुष्कर्म करना चाहते हैं, किन्तु भगवान् की इच्छा के बिना कोई कुछ भी नहीं कर सकता। तो फिर भगवान् दुष्कर्म करने की अनुमति क्यों देते हैं? भगवान् नहीं चाहते कि कोई भी जीव पाप करे। उन्हें पाप से दूर रहने के लिए वे उसके अन्तःकरण में प्रेरणा देते हैं। किन्तु जब कोई पाप करने पर उतारू हो जाता है, तो श्रीभगवान् उसे अपनी जिम्मेदारी पर वैसा करने की अनुमति भी दे देते हैं (*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*)। भगवान् की इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु वे इतने दयालु हैं कि जब बद्ध-आत्मा जिद करने लगता है तो उस आत्मा को उसके दायित्व पर वैसा करने के लिए अनुमति प्रदान कर देते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार अन्य लोकों में तथा इस ब्रह्माण्ड के पृथ्वी के अन्य भागों में, विशेषतः स्वर्गलोक में, पुत्र सदैव पिता के बाद तक जीवित रहते हैं। किन्तु इस पृथ्वीलोक पर प्रायः पुत्र अपने पिता से पहले मरता है और उसका पिता उसकी सम्पत्ति का प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। पिता या पुत्र में से किसी को भी इस वास्तविकता के दर्शन नहीं होते कि दोनों की ही मृत्यु होनी है। किन्तु जब मृत्यु आ जाती है, तो उपभोग की सारी योजनाएँ धरी रह जाती हैं।

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं

पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।

तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया

सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

वदन्ति—वे साधिकार कहते हैं; विश्वम्—समस्त भौतिक सृष्टि को; कवयः—विद्वान् सन्त; स्म—निश्चय ही; नश्वरम्—नश्वर, विनाशशील; पश्यन्ति—समाधि में देखते हैं; च—भी; अध्यात्म-विदः—आत्मज्ञानी; विपश्चितः—अत्यन्त ज्ञानीजन; तथा

अपि—तिस पर भी; मुह्यन्ति—मोहित हो जाते हैं; तव—आपके; अज—हे अजन्मा; मायया—माया के द्वारा; सु-विस्मितम्—अत्यन्त विचित्र; कृत्यम्—कार्य; अजम्—परम अजन्मा को; नतः अस्मि—मैं नमस्कार करता हूँ; तम्—उसको।

हे अजन्मा, आत्मज्ञान में समुन्नत वेदविद् अन्य तार्किकों तथा दार्शनिकों की तरह यह भलीभाँति जानते हैं कि यह भौतिक जगत नश्वर है। वे समाधि की दशा में इस जगत की वास्तविक स्थिति का अनुभव करते हैं। वे सत्य का भी उपदेश देते हैं। किन्तु कभी-कभी वे भी आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। यह आपकी अपनी ही विचित्र लीला है, अतः मैं समझ सकता हूँ कि आपकी माया अत्यन्त विचित्र है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : श्रीभगवान् की माया इस भौतिक जगत में रहने वाले बद्ध-आत्मा पर ही अपना प्रभाव नहीं जमाती, वरन् कभी-कभी ऐसे परम विद्वज्जनों पर भी प्रभाव दिखाती है जो आत्म-साक्षात्कार द्वारा इस भौतिक जगत की वास्तविक स्थिति से अनजान हैं। ज्योंही कोई यह सोचता है कि मैं देहस्वरूप हूँ (अहं ममेति) और इस देह से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ मेरी हैं, तो वह मोहग्रस्त हो जाता है। माया से उत्पन्न यह मोह विशेषतः बद्धजीवों पर प्रभाव दिखाता है, किन्तु कभी-कभी मुक्त जीव भी इसके वश में हो जाते हैं। मुक्त जीव वह व्यक्ति होता है, जिसे इस भौतिक जगत का यथेष्ट ज्ञान रहता है, जिससे वह जीवन की देहात्मबुद्धि में लिप्त नहीं होता। किन्तु दीर्घकाल तक भौतिक प्रकृति के गुणों के संसर्ग से, मुक्त जीव भी कभी-कभी माया के द्वारा छले जाते हैं इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (७.१४) में कहा है, मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते—“मेरी शरण में आने वाले ही माया के प्रभाव से बच सकते हैं।” फलतः किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि वह माया से अप्रभावित मुक्त जीव है। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह विधि-विधान का दृढ़ता से पालन करते हुए सतर्कतापूर्वक भक्ति करे। इस प्रकार वह भगवान् के चरणारविन्द पर स्थिर रह सकता है। अन्यथा थोड़ी सी भी असावधानी से तवाही मच जायेगी। महाराज भरत इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं—जैसा हम देख चुके हैं। वे निस्सन्देह एक महान् भक्त थे, किन्तु एक नन्हे मृग के प्रति अपना थोड़ा ध्यान बाँटने के कारण उन्हें और दो जन्म भोगने पड़े—एक तो मृग के रूप में और दूसरा जड़ भरत ब्राह्मण के रूप में। इसके बाद उनकी मुक्ति हुई और वे भगवान् के धाम पहुँच गए।

श्रीभगवान् अपने भक्त को क्षमा करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। किन्तु यदि भक्त उनकी इस उदारता का लाभ उठा कर जान-बूझ कर बारम्बार त्रुटि करता है, तो वे निश्चय ही उसे माया के चंगुल

में गिरने देकर दंडित करते हैं। कहने का आशय यह है कि वेदों के अध्ययन से प्राप्त मात्र कोरे ज्ञान द्वारा माया के चंगुल से रक्षा नहीं की जा सकती। मनुष्य को चाहिए कि वह दृढ़ता से श्रीभगवान् के चरणारविन्द की भक्ति करे। तभी मनुष्य की स्थिति सुरक्षित है।

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विश्व—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की; उद्भव—उत्पत्ति का; स्थान—स्थिति या पालन का; निरोध—लय का; कर्म—ये कर्म; ते—आपके (हे ईश्वर); हि—ही; अकर्तुः—पृथक्, विलग; अङ्गीकृतम्—वैदिक शास्त्रों द्वारा अब भी मान्य; अपि—यद्यपि; अपावृतः—इन समस्त कर्मों से अछूता; युक्तम्—अनुकूल, योग्य; न—नहीं; चित्रम्—विचित्र; त्वयि—आप में; कार्य-कारणे—समस्त कार्यों का मूल कारण; सर्व-आत्मनि—सभी प्रकार से; व्यतिरिक्ते—विलग; च—भी; वस्तुतः—मूल वस्तु।

हे भगवन्, यद्यपि आप इस भौतिक जगत की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय से सर्वथा विरत हैं और इन कार्यों से आप प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होते, तो भी वे आपके द्वारा किये गये माने जाते हैं। हमें इस पर विस्मय नहीं होता, क्योंकि सर्वात्मरूप होने से आप समस्त कारणों के कारण हैं। आप प्रत्येक वस्तु से विलग रहते हुए भी प्रत्येक वस्तु के सक्रिय तत्त्व हैं। इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि आपकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ही प्रत्येक घटना घटती है।

वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

वेदान्—चारों वेदों को; युग-अन्ते—कल्प के अन्त में; तमसा—साक्षात् अज्ञानरूपी दैत्यों द्वारा; तिरस्कृतान्—चुराये जाकर; रसातलात्—रसातल (निम्नतम लोक) से; यः—जो (श्रीभगवान्); नृ-तुरङ्ग-विग्रहः—आधा घोड़ा तथा आधा मनुष्य का रूप धारण कर; प्रत्याददे—लौटा दिया; वै—निश्चय ही; कवये—परम कवि (भगवान् ब्रह्मा) को; अभिया-चते—उनके माँगने पर; तस्मै—उनको (हयग्रीव रूप); नमः—मेरा नमस्कार है; ते—आपको; अवितथ-ईहिताय—जिसका संकल्प विफल नहीं होता; इति—इस प्रकार।

कल्प के अन्त में साक्षात् अज्ञान एक दैत्य का रूप धारण कर सभी वेदों को चुरा कर उन्हें रसातल ले गया। किन्तु श्रीभगवान् ने हयग्रीव का रूप धारण करके वेदों को पुनः प्राप्त किया और ब्रह्माजी के विनय करने पर उन्हें लाकर दे दिया। हे सत्यसंकल्प पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, मैं

आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि वैदिक ज्ञान अनश्वर है, किन्तु इस भौतिक जगत में कभी वह प्रकट होता है, तो कभी लुप्त होता रहता है। जब इस भौतिक जगत के प्राणी अज्ञान में डूब जाते हैं, तो वैदिक ज्ञान लुप्त हो जाता है। किन्तु भगवान् हयग्रीव अथवा मत्स्य भगवान् वैदिक ज्ञान की सदैव रक्षा करते हैं और वह ज्ञान यथासमय ब्रह्माजी के माध्यम से पुनः वितरित होने लगता है। ब्रह्माजी ही श्रीभगवान् के विश्वासपात्र प्रतिनिधि हैं, अतः जब उन्होंने वैदिक ज्ञान-कोष की पुनः याचना की तो भगवान् ने उनकी इच्छा पूरी की।

हरिवर्षे चापि भगवान्नहरिरूपेणास्ते; तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये; तद्व्यतिरूपं
महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः
प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरूपास्ते इदं चोदाहरति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

हरि-वर्षे—हरिवर्ष नामक भूभाग में; च—भी; अपि—निस्सन्देह; भगवान्—श्रीभगवान्; नर-हरि-रूपेण—नृसिंह देव के रूप में; आस्ते—अवस्थित है; तत्-रूप-ग्रहण-निमित्तम्—श्रीकृष्ण (केशव) ने नृसिंह रूप जिस कारण धारण किया; उत्तरत्र—अगले अध्यायों में; अभिधास्ये—मैं वर्णन करूँगा; तत्—वह; दयितम्—अत्यन्त प्रिय; रूपम्—रूप; महा-पुरुष-गुण-भाजनः—प्रह्लाद महाराज, जो महापुरुषोचित गुणों के आगार हैं; महा-भागवतः—सर्वश्रेष्ठ भक्त; दैत्य-दानव-कुल-तीर्थी-करण-शीला-चरितः—उनके कर्म तथा चरित्र इतने पवित्र थे कि अपने कुल में उत्पन्न समस्त दैत्यों का मोक्ष करा दिया; प्रह्लादः—महाराज प्रह्लाद; अव्यवधान-अनन्य-भक्ति-योगेन—अविच्छिन्न एवं अनन्य भक्ति के द्वारा; सह—सहित; तत्-वर्ष-पुरुषैः—हरिवर्ष के निवासियों के; उपास्ते—नमस्कार एवं पूजन करता है; इदम्—यह; च—और; उदाहरति—जप करता है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे कहते हैं—हे राजन्, भगवान् नृसिंह हरिवर्ष नामक भूभाग में वास करते हैं। मैं श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में आपको बताऊँगा कि प्रह्लाद महाराज ने किस प्रकार श्रीभगवान् को नृसिंह देव रूप धारण करने के लिए बाध्य किया। प्रह्लाद महाराज भगवद्-भक्तों में शिरोमणि हैं और महापुरुषों के अनुरूप समस्त उत्तम गुणों के आगार हैं। उनके चरित्र और कर्म से उनके दैत्य वंश के समस्त पतित जनों का उद्धार हुआ है। उन्हें भगवान् नृसिंह देव परम प्रिय हैं। इस प्रकार प्रह्लाद महाराज अपने समस्त सेवकों तथा हरिवर्ष के समस्त वासियों सहित भगवान् नृसिंह देव की पूजा निम्नलिखित मंत्रोच्चार द्वारा करते हैं।

तात्पर्य : जयदेव गोस्वामी द्वारा रचित भगवान् श्रीकृष्ण (केशव) के दशावतारों की स्तुति के प्रत्येक पद्यांश में केशव नाम आता है। उदाहरणार्थ—केशव धृत-नर-हरि-रूप जय जगदीश हरे, केशव धृत-मीन शरीर जय जगदीश हरे तथा केशव धृत-वामन-रूप जय जगदीश हरे। जगदीश शब्द से

समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी का बोध होता है। उनका मूल रूप दो भुजाओं वाले श्रीकृष्ण हैं, जिसमें वे अपने हाथ में मुरली लिए खड़े हुए गायों के पालन में व्यस्त हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है—

*चिन्तामणिप्रकरसद्यसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशतसंभ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥*

“लाखों कल्पवृक्षों से आवृत चिन्तामणि कर-गठित गृहसमूह में सुरभि गौवों का पालन करने वाले तथा सैकड़ों-हजारों लक्ष्मी-देवियों से सेवित, मैं उन आदि पुरुष गोविन्द की आराधना करता हूँ।” इस श्लोक से हमें यह ज्ञात होता है कि गोविन्द या श्रीकृष्ण आदि-पुरुष हैं। जिस प्रकार बहती हुई नदी में असंख्य तरंगें होती हैं, उसी प्रकार भगवान् के असंख्य अवतार हैं, किन्तु भगवान् का मूल रूप श्रीकृष्ण या केशव ही है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी नृसिंहदेव का उल्लेख प्रह्लाद महाराज के कारण करते हैं। प्रह्लाद महाराज को उनके पिता दैत्य हिरण्यकशिपु ने अत्यधिक कष्ट पहुँचाया था। उसके समक्ष अपने को असहाय मानकर ही उन्होंने भगवान् को पुकारा। भगवान् ने उस दैत्यराज को मारने के लिए आधा सिंह तथा आधा पुरुष वाला नृसिंहदेव का रूप धारण किया था। यद्यपि श्रीकृष्ण ही आदि-पुरुष हैं, जिसके समान कोई अन्य नहीं है, किन्तु वे अपने भक्तों को तुष्ट रखने अथवा कोई विशेष कार्य पूरा करने के उद्देश्य से नाना रूप धारण करते रहते हैं। इसलिए जयदेव गोस्वामी विभिन्न उद्देश्यों से धारण किए भगवान् के दशावतारों का वर्णन करते हुए अपनी स्तुति में केशव नाम का बारम्बार उल्लेख करते हैं।

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान्त्रन्धय रन्धय तमो
ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा; अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्षौम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ॐ—हे ईश्वर; नमः—सादर नमस्कार; भगवते—भगवान् को; नर-सिंहाय—नृसिंह नाम से विख्यात; नमः—नमस्कार है; तेजः-
तेजसे—समस्त तेजों के तेज; आविः-आविर्भव—कृपया पूर्णरूप से प्रकट करें; वज्र-नख—वज्र के समान नखों वाले; वज्र-
दंष्ट्र—वज्र के समान दाँतों वाले; कर्म-आशयान्—भौतिक कर्म के द्वारा सुखी रहने की आसुरी इच्छाएँ; रन्धय रन्धय—कृपया
परास्त करें; तमः—अज्ञान; ग्रस—दूर करें; ग्रस—दूर करें; ॐ—हे ईश्वर; स्वाहा—सादर आहुति; अभयम्—निर्भीकता;

अभयम्—निर्भीकता; आत्मनि—मेरे मन में; भूयिष्ठाः—आप प्रकट हों; ॐ—हे ईश; क्षौम्—भगवान् नृसिंह की स्तुतियों का बीज मंत्र।

समस्त तेज के स्रोत भगवान् नृसिंहदेव, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे वज्र के समान नख तथा दांतों वाले प्रभु! आप इस भौतिक जगत में हमारी आसुरी सकाम कर्म-वासनाओं को मिटा दें। हमारे हृदय में प्रकट होकर हमारे अज्ञान को भगा दें, जिससे इस भौतिक जगत में हम निडर होकर जीवन के लिए संघर्ष कर सकें।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत (४.२२.३९) में महाराज पृथु से सनत्-कुमार कहते हैं—

यत्पादपङ्कजपलाश विलासभक्त्या

कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।

तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-

स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥

“श्रीभगवान् के चरणारविन्द की सेवा में संलग्न भक्त कर्म-वासनाओं की ग्रन्थि से सरलता से मुक्त हो सकते हैं। किन्तु अभक्तों के लिए ऐसा कर पाना कठिन है क्योंकि ज्ञानी तथा योगी, जो भक्त नहीं हैं, प्रयास करने पर भी इन्द्रियतृप्ति की तरंगों को नहीं रोक पाते। अतः तुम्हें उपदेश दिया जाता है कि वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण की भक्ति में अपने को लगाओ।”

इस भौतिक जगत में रहने वाला प्रत्येक जीव हर पदार्थ का जी भर कर उपभोग करना चाहता है। इसके लिए बद्धजीव को एक के पश्चात् दूसरी देह धारण करनी पड़ती है और इस प्रकार उसकी प्रबल कामनाएँ वैसी की वैसी बनी रहती हैं। पूरी तरह कामना-रहित हुए बिना जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोक नहीं जा सकता। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी ने शुद्ध भक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

“मनुष्य को चाहिए कि सकाम कर्म अथवा दार्शनिक चिन्तन द्वारा भौतिक लाभ की कामना किए बिना श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेमा-भक्ति करे। यही विशुद्ध भक्ति है।” जब तक मनुष्य उन समस्त भौतिक कामनाओं से, जो अज्ञान-तम से उत्पन्न होती हैं पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की भक्ति में भली-भाँति संलग्न नहीं हो पाता। अतः हमें सदैव नृसिंहदेव की, जिन्होंने भौतिक कामना के

साक्षात् रूप हिरण्यकशिपु का वध किया, स्तुति करनी चाहिए। हिरण्य का अर्थ “स्वर्ण” और कशिपु का अर्थ “मुलायम शय्या” है। भौतिकतावादी व्यक्ति शरीर को सदा सुखी रखना चाहते हैं। इस प्रकार हिरण्यकशिपु भौतिकतावादी जीवन का सही प्रतिनिधि था; इसीलिए वह भक्तराज प्रह्लाद महाराज को तब तक कष्ट पहुँचाता रहा जब तक कि नृसिंहदेव ने उसका वध नहीं कर दिया। अतः जो भी व्यक्ति भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने की अभिलाषा रखता है उसे चाहिए कि वह नृसिंहदेव की उसी प्रकार सादर स्तुति करे जिस प्रकार से इस श्लोक में प्रह्लाद महाराज ने की है।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
 ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
 मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
 आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

स्वस्ति—कल्याण, मंगल; अस्तु—हो; विश्वस्य—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का; खलः—ईर्ष्यालु (लगभग सभी); प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; ध्यायन्तु—विचार करें; भूतानि—सभी जीवात्माएँ; शिवम्—मंगल; मिथः—परस्पर; धिया—अपनी बुद्धि से; मनः—मन; च—और; भद्रम्—शान्ति; भजतात्—अनुभव होने दें; अधोक्षजे—मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा अगम्य भगवान् में; आवेश्यताम्—ध्यानमग्न हों; नः—हमारी; मतिः—बुद्धि; अपि—निस्सन्देह; अहैतुकी—बिना किसी हेतु के।

इस सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो और सभी ईर्ष्यालु व्यक्ति शान्त हों, सभी जीवात्माएँ भक्तियोग का अभ्यास करके प्रशान्त हों, क्योंकि भक्ति करने पर वे एक दूसरे का कल्याण-चिन्तन कर सकेंगे। अतः हम सभी भगवान् श्रीकृष्ण की परम भक्ति में लगकर उन्हीं के विचार में मग्न रहें।

तात्पर्य : निम्नलिखित पद्य में वैष्णव का वर्णन किया गया है—

वाँछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिंधुभ्य एव च।

पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

कल्पवृक्ष के समान वैष्णव उन सबों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है जो उसके चरणकमलों की शरण में आते हैं। प्रह्लाद महाराज एक विशिष्ट वैष्णव हैं। वे अपने लिए नहीं वरन् उन समस्त जीवात्माओं के लिए—चाहे वे साधु हों, ईर्ष्यालु हों या दुष्ट हों—प्रार्थना करते हैं। उन्होंने सदैव दुष्टों का, यथा अपने पिता हिरण्यकशिपु का भी, हितचिन्तन किया। उन्होंने अपने लिए कभी कुछ नहीं माँगा, अपितु भगवान् से अपने दैत्य पिता को क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। यही वैष्णव का स्वभाव

है। वह निरन्तर समग्र विश्व के कल्याण का चिन्तन करता है।

श्रीमद्भागवत तथा *भागवत-धर्म* ऐसे व्यक्तियों के लिए हैं, जो ईर्ष्या से पूर्णतः रहित हों (*परम निर्मत्सराणाम्*)। इसलिए इस श्लोक में प्रह्लाद महाराज प्रार्थना करते हैं—*खलः प्रसीदताम्*, “सभी ईर्ष्यालु पुरुष शांत हों।” यह संसार ईर्ष्यालु पुरुषों से भरा हुआ है, किन्तु यदि कोई स्वयं को ईर्ष्या-मुक्त कर ले तो वह सामाजिक व्यवहार में उदार हो सकता है और परमार्थ के लिए सोच सकता है। जो कोई भी कृष्णभावनामृत ग्रहण करके श्रीभगवान् की सेवा में पूर्णरूपेण जुट जाता है उसका हृदय समस्त प्रकार के ईर्ष्यायुक्त विचारों से रहित हो जाता है (*मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे*)। अतः हमें चाहिए कि हम नृसिंहदेव से अपने हृदयों में विराजने के लिए विनय करें। हमें प्रार्थना करनी चाहिए—*बहिर् नृसिंहो हृदये नृसिंहः*—“भगवान् नृसिंहदेव, मेरी समस्त कुवृत्तियों का विनाश करते हुए मेरे अन्तस्थल में विराजमान हों; वे मेरे मन को विमल करें जिससे मैं शान्तिपूर्वक भगवान् की पूजा कर सकूँ और अखिल विश्व को शान्ति प्रदान कर सकूँ।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस सम्बन्ध में हमें उत्तम सीख दी है। जब कोई श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है, तो वह सदा एक न एक वर माँगता है। यहाँ तक कि निष्काम भक्त भी कोई न कोई वर माँगता है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी कृति *शिक्षाष्टक* में शिक्षा दी है—

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।

कृपया तव पादपंकजस्थितिधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

“हे नन्दकुमार! मैं आपका चिर सेवक हूँ, किन्तु न जाने कैसे जन्म-मरण के सागर में गिर गया हूँ। कृपा करके मुझे मृत्युसागर से उबारकर अपने चरणकमल का रजकण बना लीजिए।” एक अन्य स्तुति में श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*ममजन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहेतुकी त्वयि*—“मुझे जन्म-जन्मांतर आपके चरणकमलों में विशुद्ध प्रेम और भक्ति प्राप्त हो।” जब प्रह्लाद महाराज, *ॐ नमो भगवते नृसिंहाय* का जप करते हैं, तो वे ईश्वर से वर माँगते हैं, किन्तु परम वैष्णव होने के नाते वे अपनी इन्द्रिय-तुष्टि के लिए कुछ भी नहीं माँगते। इस स्तुति में उनकी प्रथम कामना है—*स्वस्त्यस्तु विश्वस्य*—“सारे विश्व का कल्याण हो।” इस प्रकार उन्होंने सबों पर, यहाँ तक कि सर्वाधिक ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने पिता पर भी, दया दिखाने की प्रार्थना की। चाणक्य पण्डित के अनुसार ईर्ष्यालु जीवात्माएँ

दो प्रकार की होती हैं—एक तो सर्प और दूसरी हिरण्यकशिपु जैसा व्यक्ति जो प्रत्येक व्यक्ति से, चाहे वह पिता हो या पुत्र, ईर्ष्या करता है। हिरण्यकशिपु अपने नन्हें से पुत्र प्रह्लाद से ईर्ष्या करता था, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता के हितार्थ वर माँगा। हिरण्यकशिपु भक्तों से ईर्ष्या करता था, किन्तु प्रह्लाद चाहते थे कि उनका पिता तथा पिता के सहश अन्य दैत्य भगवान् की कृपा से अपनी ईर्ष्यालु प्रकृति त्याग कर भक्तों को सताना बन्द कर दें (*खलःप्रसीदताम्*)। किन्तु कठिनाई यह है कि खल (ईर्ष्यालु) कभी शान्त नहीं होते। सर्प, जो एक प्रकार का खल है, उसे तो केवल मंत्र बल से या विशेष औषधि से शान्त किया जा सकता है (*मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलकेन निवार्यते*)। किन्तु खल (ईर्ष्यालु) पुरुष को किसी भी प्रकार शान्त नहीं किया जा सकता। इसीलिए प्रह्लाद महाराज विनती करते हैं कि सभी खलों के हृदयों का परिवर्तन हो और वे दूसरों की भलाई सोचें।

यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन समस्त संसार में फैल सके और भगवान् के अनुग्रह से सभी लोग इसे मानने लगे तो खल-जनों की विचारधारा में परिवर्तन आएगा। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का हित-चिन्तन करेगा। अतः प्रह्लाद महाराज प्रार्थना करते हैं—*शिवं मिथो धिया*—अपने-अपने कर्मों में प्रत्येक व्यक्ति अन्यो से ईर्ष्या करता है, किन्तु कृष्णभावनामृत में कोई किसी से ईर्ष्या नहीं करता, प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का कल्याण सोचता है। इसलिए प्रह्लाद महाराज विनती करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का मन श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में स्थिर होकर उदार बने (*भजताद् अधोक्षजे*)। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र इंगित किया गया है (*स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः*) और भगवान् श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (१८.६५) में उपदेश दिया है—*मन्मना भव मद्भक्तः*—मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का चिन्तन करे। इससे उसका मन स्वच्छ होगा (*चेतो दर्पणमार्जनम्*)। भौतिकतावादी सदैव इन्द्रियतृप्ति का चिन्तन करते हैं, किन्तु प्रह्लाद महाराज की प्रार्थना है कि भगवान् की कृपा से उनके मन परिवर्तित हों और वे इन्द्रियतृप्ति का चिन्तन छोड़ दें। यदि वे निरन्तर श्रीकृष्ण का चिन्तन करें तो सब कुछ ठीक हो जाये। कुछ लोगों का तर्क है कि यदि प्रत्येक प्राणी इस प्रकार श्रीकृष्ण का चिन्तन करे तो यह समस्त विश्व रिक्त हो जाएगा, क्योंकि सभी भगवान् के धाम वापस चले जाएँगे। किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कथन है कि ऐसा असम्भव है, क्योंकि जीवात्माएँ असंख्य हैं। यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन से जीवात्माओं का एक समूह मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, तो दूसरा

समूह सारे विश्व को भर देगा।

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु

सङ्गे यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।

यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्

सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मा—नहीं; अगार—घर; दार—पत्नी; आत्म-ज—सन्तान; वित्त—धन; बन्धुषु—मित्रों एवं सम्बन्धियों के मध्य; सङ्गः—साथ, लगाव; यदि—यदि; स्यात्—होना चाहिए; भगवत्-प्रियेषु—श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय व्यक्तियों में; नः—हम लोगों में से; यः—जो कोई; प्राण-वृत्त्या—जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से; परितुष्टः—सन्तुष्ट; आत्म-वान्—जिसने अपने मन को वश में कर लिया है और अपने आपको जान लिया (आत्मज्ञान) है; सिद्ध्यति—सफल होता है; अदूरान्—शीघ्र ही; न—नहीं; तथा—तथा; इन्द्रिय-प्रियः—इन्द्रियतुष्टि में लीन व्यक्ति।

हे भगवन्, हमारी प्रार्थना है कि हम पारिवारिक जीवन के बन्धन जिसमें घर, स्त्री, सन्तान, मित्र, धन तथा सम्बन्धीजन इत्यादि सम्मिलित हैं, इसके प्रति कभी भी आकृष्ट न हों। यदि हम में किसी से किंचित आसक्ति हो भी तो वह भक्तों से हो जिनके लिए श्रीकृष्ण ही परम प्रिय हैं। जिस व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार हो चुका है और जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से तुष्ट रहता है। वह अपनी इन्द्रियतुष्टि का प्रयास नहीं करता। ऐसा व्यक्ति जल्दी ही कृष्णभावनामृत की ओर अग्रसर होता है, किन्तु जो भौतिक वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, उनके लिए ऐसा कर पाना कठिन है।

तात्पर्य : जब श्री चैतन्य महाप्रभु से वैष्णव अथवा कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के कर्तव्य की व्याख्या करने के लिए अनुरोध किया गया तो उन्होंने तुरन्त कहा—*असत्संग-त्याग, —एइ वैष्णव-आचार*। वैष्णव का प्रथम कर्तव्य है कि वह ऐसे व्यक्ति की संगति तुरन्त त्याग दे जो श्रीकृष्ण का भक्त नहीं है और स्त्री, सन्तान, धन आदि भौतिक वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहता है। प्रह्लाद महाराज भी श्रीभगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें उन अभक्तों से दूर रहें जो भौतिक जीवन बिताते हैं। यदि उन्हें किसी से अनुरक्त होना भी पड़े तो मात्र भक्त से।

भक्त की रुचि इन्द्रियों की तृप्ति के लिए अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाने की ओर कभी भी नहीं होती। निस्सन्देह, जब तक कोई भी इस भौतिक जगत में रहता है, उसे भौतिक देह चाहिए और भक्ति करने के लिए इसका पोषण होना चाहिए। शरीर का पोषण श्रीकृष्ण-प्रसाद खाकर सरलता से किया

जा सकता है। जैसाकि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (९.२६) में कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि मुझे कोई प्रेम एवं भक्ति से एक पत्री, पुष्प, फल या जल अर्पण करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।” जीभ की तुष्टि के लिए व्यंजनों की संख्या में अनावश्यक वृद्धि क्यों की जाये? भक्तों को चाहिए कि सादा से सादा भोजन करें। अन्यथा भौतिक वस्तुओं के प्रति लगाव बढ़ता जायेगा और इन्द्रियाँ प्रबल होने के कारण अधिकाधिक आनन्द चाहेंगी। इससे जीवन के असली कार्य अर्थात् कृष्णभावनामृत की उन्नति रुक जायेगी।

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं

तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ।

हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं

को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिनके (भक्तों के); सङ्ग-लब्धम्—संग से उपलब्ध; निज-वीर्य-वैभवम्—जिसका प्रभाव असामान्य है; तीर्थम्—तीर्थस्थल, यथा गंगा नदी; मुहुः—बारम्बार; संस्पृशताम्—उन स्पर्शों का; हि—निश्चयपूर्वक; मानसम्—मन के मल; हरति—हर लेती है; अजः—अजन्मा; अन्तः—अन्तःकरण में; श्रुतिभिः—कानों से; गतः—प्रविष्ट; अङ्ग-जम्—शरीर के मल या संदूषण; कः—कौन; वै—निस्सन्देह; न—नहीं; सेवेत—सेवा करेगा; मुकुन्द-विक्रमम्—भगवान् मुकुन्द के यशस्वी कार्यों की।

ऐसे व्यक्तियों की संगति करने से, जिनके लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द ही सब कुछ हैं, भगवान् के यशस्वी कार्यों को सुनकर शीघ्र ही समझ सकता है। मुकुन्द के यशस्वी कार्य इतने सक्षम हैं कि इनको सुनकर ही भगवान् की संगति प्राप्त की जा सकती है। निरन्तर उत्सुकतापूर्वक भगवान् के यशस्वी कार्यों का वर्णन सुनते रहने से परम सत्य श्रीभगवान् ध्वनि तरंगों के रूप में हृदय में प्रवेश करते हैं और समस्त कल्मष को दूर कर देते हैं। दूसरी ओर यद्यपि गंगास्नान से मल तथा संदूषण घटते हैं, किन्तु स्नान तथा पवित्र स्थानों के दर्शन से दीर्घकाल के अनन्तर ही हृदय स्वच्छ हो पाता है। अतः कौन ऐसा विज्ञपुरुष होगा जो जीवन की सिद्धि के लिए भक्तों की संगति नहीं करना चाहेगा ?

तात्पर्य : निस्सन्देह, गंगास्नान से कई संक्रामक रोग दूर हो जाते हैं, किन्तु इससे भौतिकता से

आसक्त मनुष्य का मन स्वच्छ नहीं हो सकता, जिसके कारण भौतिक जीवन में सभी प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। किन्तु जो कोई भगवान् के कार्यों का श्रवण करके उनसे प्रत्यक्ष संगति करता है, वह मन की मलिनता को धोकर शीघ्र ही कृष्णभावनामृत को प्राप्त करता है। *श्रीमद्भागवत* (१.२.१७) में सूत गोस्वामी ने इसकी पुष्टि की है—

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।

हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

जब कोई भगवान् के कार्यों का वर्णन सुनता है, तो प्रत्येक के हृदय में वास करने वाले परमात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे स्वयं श्रोता के मनोमल को स्वच्छ कर देते हैं। *हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति*—वे मन के समस्त मल को धो डालते हैं। भौतिकता मन के भीतर दूषित वस्तुओं से उत्पन्न होती है, अपने मन को धो डालने पर मनुष्य कृष्णभावनामृत की अपनी मूल स्थिति में पहुँच जाता है और इस प्रकार उसका जीवन सफल हो जाता है। इसीलिए भक्तिमार्ग के सभी महान् सन्तजन श्रवण विधि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने “हरे कृष्ण” मंत्र के सामूहिक कीर्तन का शुभारम्भ किया जिससे प्रत्येक व्यक्ति श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का श्रवण कर सके, क्योंकि, “हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे” के श्रवण मात्र से वह पवित्र हो जाता है (*चेतोदर्पणमार्जनम्*)। इसीलिए हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे संसार में मुख्यतया हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन कराने में लगा हुआ है।

जब “हरे कृष्ण” के कीर्तन से मन शुद्ध हो जाता है, तो मनुष्य क्रमशः कृष्णभावनामृत-स्थिति को प्राप्त होता है और वह *श्रीमद्भागवत*, *भगवद्गीता*, *श्रीचैतन्यचरितामृत* तथा *भक्तिरसामृतसिंधु* जैसे ग्रन्थों को पढ़ता है। इस प्रकार वह भौतिक दूषण से अधिकाधिक पवित्र होता जाता है। *श्रीमद्भागवत* (१.२.१८) में कहा गया है—

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।

भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

“निरन्तर *श्रीमद्भागवत* का श्रवण करने तथा निष्काम भक्त की सेवा से मन के सारे कष्ट दूर हो जाते हैं और यशस्वी भगवान् के प्रति सेवाभाव स्थायी रूप में स्थापित हो जाता है जिनकी प्रशंसा दिव्य

गीतों द्वारा की जाती है।” इस प्रकार भगवान् के शक्तिशाली कार्यकलापों के श्रवण मात्र से भक्त का हृदय पूरी तरह शुद्ध हो जाता है और चिरन्तन दास के रूप में, जो भगवान् का भिन्नांश होता है, उसकी अपनी मूल स्थिति प्रकट हो जाती है। भक्त द्वारा भक्ति में संलग्न होने पर रजोगुण तथा तमोगुण क्रमशः पराभूत हो जाते हैं और वह सतोगुण में ही सारे कार्य करता है। उस समय वह प्रमुदित हो जाता है और शनै-शनै वह कृष्णभावनामृत की ओर अग्रसर होता है।

सभी बड़े-बड़े आचार्यों का मत है कि मनुष्यों को श्रीभगवान् के सम्बन्ध में सुनने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। तब सफलता निश्चित है। जितना ही अधिक हम अपने हृदयों के भौतिक आसक्ति के मल को स्वच्छ करेंगे उतना ही अधिक श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, वैशिष्ट्य और कार्यों के प्रति आकृष्ट होंगे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; अस्ति—है; भक्तिः—भक्ति; भगवति—श्रीभगवान् के प्रति; अकिञ्चना—निष्काम; सर्वैः—समस्त; गुणैः—उत्तम गुणों के द्वारा; तत्र—वहाँ (उस व्यक्ति में); समासते—निवास करते हैं; सुराः—समस्त देवता; हरौ—भगवान् में; अभक्तस्य—अभक्त का; कुतः—कहाँ; महत्-गुणाः—उत्तम गुण; मनोरथेन—मानसिक चिन्तन द्वारा; असति—नश्वर भौतिक जगत में; धावतः—दौड़ता हुआ; बहिः—बाहर।

जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव के प्रति शुद्ध भक्ति उत्पन्न कर लेता है उसके शरीर में सभी देवता तथा उनके महान् गुण यथा धर्म, ज्ञान तथा त्याग प्रकट होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति भक्ति से रहित है और भौतिक कर्मों में व्यस्त रहता है उसमें कोई सद्गुण नहीं आते। भले ही कोई व्यक्ति योगाभ्यास में दक्ष क्यों न हो और अपने परिवार और सम्बन्धियों का भलीभाँति भरण-पोषण करता हो वह अपनी मनोकल्पना द्वारा भगवान् की बहिरंगा-शक्ति की सेवा में तत्पर होता है। भला ऐसे पुरुष में सद्गुण कैसे आ सकते हैं?

तात्पर्य : जैसाकि अगले श्लोक में व्याख्या की गई है, श्रीकृष्ण समस्त जीवात्माओं के आदि स्रोत हैं। भगवद्गीता (१५.७) में इसकी पुष्टि हुई है जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत में यह जीवात्माएँ मेरे ही शाश्वत भिन्नांश हैं। बद्ध दशा में होने के कारण वे मन और पाँच इन्द्रियों के साथ घोर संघर्ष कर रहे हैं।” सभी जीवात्माएँ श्रीकृष्ण के भिन्नांश हैं, अतः जब वे मूल कृष्णभावना को पुनःप्राप्त कर लेती हैं, तो उनमें थोड़ी मात्रा में श्रीकृष्ण के महान् गुण आ जाते हैं। जब कोई नवधाभक्ति में रत होता है (श्रवणं कर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्) तो उसका हृदय पवित्र हो जाता है और वह श्रीकृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को तुरन्त समझ जाता है। तब उसमें कृष्णभावनामृत के आदि गुण जागरित हो उठते हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृत के अध्याय आठ में आदि लीला के अन्तर्गत भक्तों के कतिपय गुणों का वर्णन आता है। उदाहरणार्थ, श्रीपण्डित हरिदास को अत्यन्त शिष्ट, सहनशील, शान्त, विशाल हृदय तथा गम्भीर बताया गया है। इसके अतिरिक्त वह मृदुभाषी, धैर्यवान्, विनयशील, परोपकारी, द्वैत भाव से मुक्त मन वाला तथा कपटरहित था। मूलतः ये श्रीकृष्ण के गुण हैं और जब कोई भक्त बन जाता है, तो ये गुण स्वतः उसमें प्रकट हो जाते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत के लेखक श्रीकृष्णदास कविराज का कथन है कि वैष्णव के शरीर में समस्त गुण प्रकट होते हैं और इन्हीं सद्गुणों के आधार पर वैष्णव तथा अवैष्णव में अन्तर किया जा सकता है। उन्होंने वैष्णवों के छब्बीस गुणों की सूची प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है—(१) वह सबों पर दयालु होता है। (२) उसका कोई शत्रु नहीं होता। (३) वह सत्यनिष्ठ होता है। (४) वह सब पर समभाव रखता है। (५) उसमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं पाया जाता। (६) वह उदार होता है। (७) वह मृदु होता है। (८) वह सदैव स्वच्छ रहता है। (९) उसके सम्पत्ति नहीं होती। (१०) वह सभी के कल्याण के लिए कार्य करता है। (११) वह शान्त होता है। (१२) वह श्रीकृष्ण का शरणागत होता है। (१३) उसे कोई भौतिक कामना नहीं सताती। (१४) वह विनम्र होता है। (१५) वह स्थिर-चित्त होता है। (१६) वह अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखता है। (१७) वह आवश्यकता से अधिक नहीं खाता। (१८) वह ईश्वर की माया से प्रभावित नहीं होता। (१९) वह सबों का आदर करता है। (२०) वह अपने सम्मान का भूखा नहीं रहता। (२१) वह अत्यन्त गम्भीर होता है। (२२) वह कृपालु होता है। (२३) वह सखा होता है। (२४) वह कवित्वपूर्ण होता है। (२५) वह पटु होता है। (२६) वह मितभाषी होता है।

हरिर्हि साक्षाद्भगवान्शरीरिणाम्
 आत्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
 हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
 तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

हरिः—भगवान्; हि—निश्चय ही; साक्षात्—प्रत्यक्ष रूप में; भगवान्—भगवान्; शरीरिणाम्—समस्त देहधारियों की; आत्मा—
 आत्मा; झषाणाम्—जलचरों के; इव—सदृश; तोयम्—जल; ईप्सितम्—कामना की जाती है; हित्वा—त्यागकर; महान्—
 महान् व्यक्ति; तम्—उसको; यदि—यदि; सज्जते—लिप्त हो जाता है; गृहे—गृहस्थ जीवन में; तदा—उस समय; महत्त्वम्—
 बड़प्पन; वयसा—आयु से; दम्-पतीनाम्—पति-पत्नी का।

जिस प्रकार जलचर प्राणी सदैव विशाल जलराशि में रहना चाहते हैं उसी प्रकार समस्त
 बद्धात्माएँ श्रीभगवान् के अपार अस्तित्व में रहने की कामना करती हैं। अतः यदि भौतिक
 गणना के आधार पर माना गया कोई श्रेष्ठ पुरुष किन्हीं कारणों से परमात्मा की शरण न ग्रहण
 कर गृहस्थ जीवन में लिप्त हो जाता है, तो उसकी श्रेष्ठता निम्न श्रेणी के तरुण दम्पति जैसी
 होती है। भौतिक जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्ति से समस्त आध्यात्मिक गुणों का लोप हो
 जाता है।

तात्पर्य : यद्यपि मकर अत्यन्त भयावना पशु है, किन्तु जल के बाहर आने पर वह अशक्त हो जाता
 है। जल के बाहर आने पर वह अपनी मूल-शक्ति नहीं दिखा सकता। इसी प्रकार सर्वव्यापी परमात्मा
 समस्त प्राणियों का स्रोत है और सभी प्राणी उसके विभिन्न अंश हैं। जब प्राणी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्
 वासुदेव के सम्पर्क में रहता है, तो वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति को उसी प्रकार प्रकट करता रहता है,
 जिस प्रकार जल में मकर अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। तात्पर्य यह है कि जब जीवात्मा आध्यात्मिक
 जगत में रहता है और आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न रहता है तभी उसकी महानता के दर्शन होते हैं।
 अनेक गृहस्थ वेदों में पारंगत होते हुए भी गृहस्थ जीवन में लिप्त रहते हैं। उनकी तुलना यहाँ जल के
 बाहर आये हुए मकर से की जाती है, क्योंकि वे समस्त आध्यात्मिक शक्ति से विहीन होते हैं। उनकी
 स्थिति उस तरुण पति-पत्नी युग्म से की जा सकती है जो अशिक्षित होते हुए भी पारस्परिक अस्थायी
 सुन्दरता के प्रति आकृष्ट होकर परस्पर प्रशंसा करते रहते हैं। इस प्रकार की महानता निम्न श्रेणी के
 व्यक्तियों द्वारा सरायी जाती है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह परमात्मा की शरण में जाये, जो समस्त जीवात्माओं का

मूल स्रोत है। किसी भी व्यक्ति को तथाकथित भौतिकतावादी गृहस्थ जीवन के सुख में वृथा समय नहीं गँवाना चाहिए। वैदिक सभ्यता में पचास वर्ष की आयु तक ही इस प्रकार का पंगु जीवन बिताने की अनुमति दी जाती है। फिर तो गृहस्थ जीवन त्याग कर वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम में प्रवेश करना होता है (जिसमें वह भगवान् का पूर्णाश्रय ग्रहण करता है)।

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु

मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।

हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं

नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; रजः—रजोगुण का; राग—भौतिक वस्तुओं के प्रति लगाव; विषाद—तब निराशा; मन्यु—क्रोध; मान-स्पृहा—समाज में सम्मानित बनने की कामना; भय—भय; दैन्य—दीनता का; अधिमूलम्—मूल कारण; हित्वा—परित्याग करके; गृहम्—गृहस्थ जीवन; संसृति-चक्रवालम्—जन्म-मरण का चक्र; नृसिंह-पादम्—भगवान् नृसिंह देव के चरणारविन्द; भजत—पूजा करते हुए; अकुतः-भयम्—निर्भीकता की शरण; इति—इस प्रकार।

अतः, हे असुरगण, गृहस्थ जीवन के तथाकथित सुख का परित्याग करके भगवान् नृसिंह देव के चरणारविन्दों की शरण ग्रहण करो। वे ही निर्भीकता की वास्तविक शरण-स्थली हैं। सांसारिक अनुरक्ति, दुर्दमनीय कामनाएँ, विषाद, क्रोध, निराशा, भय, झूठी प्रतिष्ठा की भूख इन सबका मूल कारण गृहस्थ जीवन में आसक्ति है, जिसके कारण जीवन-मरण का चक्र चलता रहता है।

केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरिसङ्ख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

केतुमाले—केतुमालवर्ष में; अपि—भी; भगवान्—श्रीभगवान्, विष्णु; कामदेव-स्वरूपेण—कामदेव के रूप में (प्रद्युम्न); लक्ष्म्याः—लक्ष्मी देवी की; प्रिय-चिकीर्षया—तुष्ट करने की कामना; प्रजापतेः—प्रजापति की; दुहितृणाम्—पुत्रियों के; पुत्राणाम्—पुत्रों का; तत्-वर्ष-पतीनाम्—उस भूभाग (वर्ष) के राजा; पुरुष-आयुषा—मनुष्य के जीवनकाल में (लगभग १०० वर्ष); अहः-रात्र—दिन तथा रातें; परिसङ्ख्यानानाम्—समान संख्या वाले; यासाम्—जिनका (पुत्रियों के); गर्भाः—गर्भ; महा-पुरुष—श्रीभगवान् का; महा-अस्त्र—महास्त्र (चक्र); तेजसा—तेज या प्रभा के द्वारा; उद्वेजित-मनसाम्—उत्तेजित चित्त से; विध्वस्ताः—विध्वंस; व्यसवः—मृत; संवत्सर-अन्ते—वर्ष के अन्त में; विनिपतन्ति—गिर जाते हैं।

शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—केतुमालवर्ष नामक भूभाग में भगवान् विष्णु अपने भक्तों के संतोष के लिए ही कामदेव के रूप में रहते हैं। इन भक्तों में लक्ष्मीजी, प्रजापति संवत्सर तथा

संवत्सर के समस्त पुत्र तथा पुत्रियाँ सम्मिलित हैं। प्रजापति की पुत्रियाँ रात के तथा उनके पुत्र दिन के नियामक देवता माने जाते हैं। प्रजापति की सन्तानों की संख्या ३६,००० है जो मनुष्य के जीवन काल के प्रत्येक दिन तथा रात की संख्या के तुल्य है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में प्रजापति की पुत्रियाँ श्रीभगवान् के चक्र को देखकर अत्यन्त उद्वेलित हो उठती हैं जिससे उन सबों का गर्भपात हो जाता है।

तात्पर्य : कामदेव श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में प्रकट होते हैं और वे ही विष्णुतत्त्व हैं। ऐसा क्यों है, इसकी व्याख्या मध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण से उद्धरण देकर की है—कामदेवस्थितं विष्णुं उपास्ते। यद्यपि यह कामदेव विष्णुतत्त्व है, किन्तु उसका शरीर आध्यात्मिक न होकर भौतिक है। भगवान् विष्णु प्रद्युम्न या कामदेव के रूप में इस भौतिक शरीर को धारण करते हैं, किन्तु फिर भी वे आध्यात्मिक रूप में आचरण करते हैं। चाहे वे भौतिक रूप धारण करें या आध्यात्मिक, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे किसी भी दशा में रहकर आध्यात्मिक रूप में आचरण कर सकने वाले हैं। मायावादी दार्शनिक भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को भी भौतिक मानते हैं, किन्तु उनके मत से भगवान् की आध्यात्मिक क्रियाशीलता में कोई बाधा नहीं पहुँचती।

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया
किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अतीव—अत्यन्त; सु-ललित—सुन्दर; गति—चाल से; विलास—लीलाओं से; विलसित—प्रकट रूप; रुचिर—मनोहर; हास-लेश—मन्द मुसकान; अवलोक-लीलया—लीलापूर्ण चितवन से; किञ्चित्-उत्तम्भित—कुछ-कुछ ऊपर उठा; सुन्दर—सुन्दर; भू-मण्डल—भौहों से; सुभग—शुभ; वदन-अरविन्द-श्रिया—अपने कमल तुल्य मुख से; रमाम्—रमा अथवा लक्ष्मी देवी को; रमयन्—आनन्दित करते हुए; इन्द्रियाणि—समस्त इन्द्रियों को; रमयते—आनन्दित करते हैं।

केतुमालवर्ष में भगवान् कामदेव (प्रद्युम्न) अत्यन्त लालित्य पूर्ण चाल से चलते हैं। उनकी मन्द मुसकान मनोहर है और जब वे अपनी भृकुटियों को किञ्चित ऊपर उठा कर लीलापूर्वक देखते हैं, तो उनके मुख की सुन्दरता बढ़ जाती है और वे लक्ष्मीजी को आनन्दित करते हैं। इस प्रकार वे अपनी दिव्य इन्द्रियों का आनन्द लेते हैं।

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहःसु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; भगवतः—श्रीभगवान् का; माया-मयम्—भक्तों के लिए स्नेह से पूरित; रूपम्—रूप; परम—सर्वोच्च; समाधि-योगेन—प्रभु की सेवा में मन तल्लीन होने से; रमा—लक्ष्मी; देवी—दिव्य नारी; संवत्सरस्य—संवत्सर नामक; रात्रिषु—रात्रि में; प्रजापतेः—प्रजापति की; दुहितृभिः—पुत्रियों के साथ; उपेत—मिलकर; अहःसु—दिन में; च—भी; तत्-भर्तृभिः—पतियों के साथ; उपास्ते—पूजा करती हैं; इदम्—यह; च—भी; उदाहरति—जप करती हैं।

लक्ष्मीजी संवत्सर की अवधि में दिन के समय प्रजापति के पुत्रों के साथ और रात्रि में उनकी पुत्रियों के साथ मिलकर परम दयालु कामदेव रूप में भगवान् की पूजा करती हैं। भक्ति में तल्लीन रहकर लक्ष्मीजी निम्नलिखित मंत्रों का जप करती हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में प्रयुक्त *मायामयम्* शब्द का अर्थ मायावादियों की विवेचना के अनुसार नहीं ग्रहण करना चाहिए। माया का अर्थ प्रेम तथा मोह (भ्रम) दोनों है। जब माता अपने बालक को प्यार करती है, तो वह मायामय कहलाती है। भगवान् विष्णु चाहे जिस रूप में प्रकट हों, वे अपने भक्तों पर सदैव स्नेहिल रहते हैं, अतः यहाँ *मायामयम्* शब्द का व्यवहार, “भक्तों के प्रति अत्यन्त स्नेहिल” अर्थ में हुआ है। श्रील जीव गोस्वामी लिखते हैं कि इस सम्बन्ध में मायामयम् का एक अर्थ *कृपा-प्रचुरम्* (अत्यधिक दयालु) भी हो सकता है। इसी प्रकार श्रील वीर राघव कहते हैं—*माया प्रचुरनात्मीयसंकल्पेन परिगृहीतम् इत्यर्थः ज्ञानपर्यायोऽत्र मायाशब्दः*—जब अन्तरंग सम्बन्धों के कारण कोई अत्यन्त स्नेहिल होता है, तो उसे मायामय कहा जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *मायामयम्* को *माया* तथा *आमयम्* शब्दों में विभक्त करके व्याख्या की है। वे इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—चूँकि जीवात्मा मोह रोग से घिरा है, अतः भगवान् अपने भक्त को माया के चंगुल से छुड़ाने और माया के कारण उत्पन्न रोग से छुड़ाने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं।

ॐ ह्रां ह्रीं हूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ओम्—हे ईश्वर; ह्राम् ह्रीम् ह्रूम—सिद्धि के लिए जप करने जाने वाला बीज मंत्र; ओम्—हे ईश्वर; नमः—नमस्कार है; भगवते—श्रीभगवान् के चरणकमलों में; हृषीकेशाय—इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश को; सर्व-गुण—समस्त दिव्य गुणों सहित; विशेषैः—समस्त प्रकारों सहित; विलक्षित—विशेष रूप से दृष्ट्य; आत्मने—समस्त जीवात्माओं में; आकूतीनाम्—समस्त प्रकार के कार्यो का; चित्तीनाम्—समस्त प्रकार के ज्ञानों का; चेतसाम्—मन के कार्यो, यथा संकल्प तथा मानसिक प्रयत्नों

का; विशेषाणाम्—अपने-अपने लक्ष्यों का; च—तथा; अधिपतये—अधिपति तक; षोडश-कलाय—उत्पत्ति की सोलह कलाएँ जिनके अंगस्वरूप (यथा पाँच इन्द्रियों के विषय तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ); छन्दः-मयाय—समस्त अनुष्ठानों को; अन्न-मयाय—जो समस्त जीवात्माओं का भरण करता है; अमृत-मयाय—जो अमर रहता है; सर्व-मयाय—जो सर्वव्यापी है; सहसे—शक्तिमान; ओजसे—इन्द्रियों को बल प्रदान करने वाला; बलाय—शरीर को शक्ति प्रदान करने वाला; कान्ताय—समस्त जीवात्माओं के परम भर्ता या स्वामी; कामाय—भक्तों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले को; नमः—विनीत नमस्कार; ते—आपको; उभयत्र—सदैव (दिन तथा रात्रि अथवा इस तथा अगले जीवन में); भूयात्—शुभ हो।

मेरी समस्त इन्द्रियों के नियन्ता तथा समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति के स्तोत्र भगवान् हृषीकेश को मेरा नमस्कार है। वे समस्त दैहिक, मानसिक तथा बौद्धिक कर्मों के अधीश्वर और उनके फलों के एकमात्र भोक्ता हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषय तथा मन समेत ग्यारह इन्द्रियाँ उनकी आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं। वे समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उनकी शक्तिस्वरूपा होने के कारण उनसे अभिन्न हैं; वे प्रत्येक व्यक्ति की दैहिक और मानसिक शक्ति के कारण रूप हैं, जो उनसे अभिन्न हैं। दरअसल, वे समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले तथा उनके भर्ता हैं। समस्त वेदों का ध्येय उनकी उपासना है। अतः हम सभी उन्हें सविनय नमस्कार करते हैं। वे इस जन्म में तथा अगले जन्म में सदा हमारे अनुकूल रहें।

तात्पर्य : इस श्लोक में *मायामय* शब्द की और अधिक भी व्याख्या की गई है कि किस प्रकार भगवान् विभिन्न दिशाओं में अपनी दया का प्रसार करते हैं। *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—श्रीभगवान् की शक्तियाँ कई प्रकार से समझी जाती हैं। इस श्लोक में उन्हें प्रत्येक वस्तु का—यहाँ तक कि हमारे देह, मन, इन्द्रियों, कर्म, बल, शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संकल्प का भी—मूल स्रोत कहा गया है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक वस्तु में श्रीभगवान् की शक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं। *भगवद्गीता* (७.८) में कहा गया है—*रसोऽहमप्सु कौन्तेय*—जल का स्वाद भी कृष्णमय है। हमारे भरण के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें क्रियाशील तत्त्व श्रीकृष्ण ही हैं।

इस श्लोक की रचना परमेश्वर की सादर स्तुति ऐश्वर्य की देवी रमा ने की है। यह चेतना शक्ति से ओत-प्रोत है। गुरुदेव के देखरेख में सबों को इस मंत्र का जाप करना चाहिए। इस तरह ईश्वर का पूर्ण भक्त बना जा सकता है। भौतिक बन्धन से पूर्ण छुटकारा पाने के लिए इस मंत्र का जप करना चाहिए और मुक्ति मिलने के पश्चात् भी वैकुण्ठलोक में श्रीभगवान् की पूजा करते हुए इसे जपते रहना चाहिए। निस्सन्देह, सभी मंत्र इस जन्म तथा अगले जन्म के लिए हैं, जैसाकि श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.१४)

में स्वयं पुष्टि की है—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

“ये महात्माजन नित्य-निरन्तर मेरा कीर्तन करते हुए, दृढ़ निश्चयपूर्वक चेष्टा करते हुए मुझे नमस्कार करते हुए, भक्तिभाव से निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।” जो भक्त इस जीवन में तथा अगले जीवन में महामंत्र या किसी अन्य मंत्र का जप करता है, वह *नित्ययुक्तोपासक* कहलाता है।

स्त्रियो ब्रतैस्त्वा हृषीकेश्वरं स्वतो

ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।

तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं

प्रियं धनायूषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—सभी स्त्रियाँ; ब्रतैः—व्रत उपवास रखकर; त्वा—आप; हृषीकेश्वरम्—इन्द्रियों के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; स्वतः—स्वयमेव; हि—निश्चयपूर्वक; आराध्य—आराधना करके; लोके—इस जगत में; पतिम्—पति, स्वामी; आशासते—याचना करते हैं; अन्यम्—दूसरा; तासाम्—उन सभी स्त्रियों का; न—नहीं; ते—वे पति; वै—निस्सन्देह; परिपान्ति—रक्षा करने में समर्थ; अपत्यम्—सन्तानें; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; धन—सम्पत्ति; आयूषि—अथवा जीवनकाल; यतः—क्योंकि; अस्व-तन्त्राः—आश्रित।

हे प्रभो, आप निश्चित रूप से समस्त इन्द्रियों के पूर्ण रूप से स्वतंत्र स्वामी हैं। अतः समस्त स्त्रियाँ जो अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए पति को पाने की कामना से संकल्पों का दृढ़पालन करके आपकी उपासना करती हैं, वे अवश्य ही मोहग्रस्त हैं। वे यह नहीं जानती कि ऐसा पति न तो उनकी और न ही उनकी सन्तानों की रक्षा कर सकता है। वह स्वयं ही काल, कर्मफल तथा प्रकृति-गुणों के अधीन है जो सब आपके अधीनस्थ हैं, अतः वह न तो सम्पत्ति की रक्षा कर सकता है और न अपने सन्तानों की।

तात्पर्य : प्रस्तुत श्लोक में देवी लक्ष्मी उन स्त्रियों के प्रति दयाभाव प्रदर्शित कर रही हैं, जो सुयोग्य वर पाने के उद्देश्य से भगवान् की आराधना करती हैं। यद्यपि ऐसी स्त्रियाँ सन्तान, धन, दीर्घायु तथा अपनी प्रिय वस्तुओं को प्राप्त करने की कामना करके सुखी बनना चाहती हैं, किन्तु वे वैसा नहीं कर पातीं। भौतिक जगत में तथाकथित पति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर आश्रित होता है। ऐसी स्त्रियों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनके पति अपने कर्मफलों के आधार पर अपनी पत्नी, सन्तान, पत्नी के धन

तथा उसके जीवन का पालन नहीं कर पाते। अतः वास्तव में समस्त स्त्रियों के परम पति श्रीकृष्ण हैं। गोपियाँ मुक्त जीव होने के कारण इस तथ्य से परिचित थीं। इसीलिए उन्होंने अपने सांसारिक पतियों को त्याग कर श्रीकृष्ण को अपने वास्तविक पति के रूप में स्वीकार किया। श्रीकृष्ण न केवल गोपियों के, वरन् प्रत्येक जीवात्मा के वास्तविक स्वामी हैं। अतः सबों को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि श्रीकृष्ण सभी जीवात्माओं के वास्तविक पति हैं। इसलिए *भगवद्गीता* में उन्हें प्रकृति (स्त्री) कहा गया है, पुरुष (नर) नहीं। *भगवद्गीता* (१०.१२) में केवल श्रीकृष्ण को ही पुरुष कहकर सम्बोधित किया गया है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥

“अर्जुन ने कहा, हे प्रभो! आप परम ब्रह्म, परम धाम तथा पालनकर्ता परम-तत्त्व तथा सनातन दिव्य पुरुष हैं। आप ही चिन्मय आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी सौन्दर्य हैं।”

श्रीकृष्ण आदिपुरुष हैं और जीवात्माएँ प्रकृति स्वरूपा हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण भोक्ता हैं और सभी जीवात्माएँ उनके भोगार्थ हैं। अतः यदि कोई स्त्री अपनी रक्षा के लिए संसारी पति की चाह करती है या कोई पुरुष पति बनने के लिए पत्नी की कामना करता है, तो वह मोहग्रस्त है। पति बनने का अर्थ होता है धन तथा सुरक्षा द्वारा पत्नी और सन्तान का अच्छा पोषण। किन्तु सांसारिक पति ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाता, क्योंकि वह कर्माधीन होता है। *कर्मणा दैव-नेत्रेण*—उसकी परिस्थितियाँ उसके विगत कर्मों से निर्धारित होती हैं। अतः कोई यह गर्व करे कि वह अपनी पत्नी की रक्षा कर सकता है, तो वह मोहग्रस्त ही है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र पति हैं, अतः इस भौतिक जगत में पति-पत्नी का सम्बन्ध कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। चूँकि हममें विवाह करने की आकांक्षा रहती है, इसलिए श्रीकृष्ण दयापूर्वक तथाकथित पति को पत्नी बनाने के लिए अनुमति देते हैं। और पारस्परिक सन्तोष के लिए स्त्री को पति बनाने की अनुमति देते हैं। *ईशोपनिषद्* में कहा गया है— *तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा*—ईश्वर सबों को उसका प्राप्य प्रदान करते हैं। तो भी वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक जीवात्मा प्रकृति है और श्रीकृष्ण ही एकमात्र (भर्ता) पति हैं।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।

यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य ॥

(चैतन्यचरितामृत आदि ५.१४२)

श्रीकृष्ण प्रत्येक प्राणी के आद्यपति हैं और अन्य समस्त जीवात्माएँ पति या पत्नी के रूप में उन्हीं की इच्छा से नाच रही हैं। इन्द्रियतृप्ति के लिए तथाकथित पति अपनी पत्नी से भले ही संभोग करे, किन्तु उसकी इन्द्रियों का संचालन हृषीकेश द्वारा होता है जो वास्तविक पति हैं।

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्संदेह; पतिः—पति; स्यात्—हो; अकुतः—भयः—जो किसी से भयभीत नहीं है, निर्भय; स्वयम्—आत्मनिर्भर; समन्ततः—पूर्णतया; पाति—भरण करता है; भय-आतुरम्—अत्यन्त भयभीत; जनम्—व्यक्ति को; सः—अतः वह; एकः—एक; एव—केवल; इतरथा—अन्यथा; मिथः—एक दूसरे से; भयम्—भय, डर; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; आत्म-लाभात्—आपकी प्राप्ति की अपेक्षा; अधि—पहतर; मन्यते—मानी जाती है; परम्—अन्य वस्तु।

जो स्वयं निर्भय है तथा जो सभी भयभीत व्यक्तियों को शरण प्रदान करता है, केवल वही वास्तव में पति तथा रक्षक हो सकता है। अतः, हे प्रभो, आप ही एकमात्र पति हैं, कोई अन्य इस पद का भागी नहीं हो सकता। यदि आप एकमात्र पति न होते तो आप भी अन्यो से डरते। अतः वेदों के पारंगत व्यक्ति आपको ही प्रत्येक का स्वामी स्वीकार करते हैं और यह मानते हैं कि आपसे बढ़कर कोई अन्य पति एवं रक्षक नहीं है।

तात्पर्य : यहाँ पर पति या संरक्षक की स्पष्ट व्याख्या की गई है। मनुष्य इस श्रेष्ठ पद का अर्थ समझे बिना पति, संरक्षक, शासक अथवा राजनीतिक नेता बनना चाहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में न जाने कितने ऐसे व्यक्ति हैं, जो कुछ समय के लिए अपने को पति, संरक्षक, शासक अथवा राजनीतिक नेता मानने का दावा करते हैं, किन्तु कालान्तर में परमेश्वर उन्हें इन पदों से हटा देना चाहता है और तुरन्त ही उनके इन जीवन पदों का अन्त हो जाता है। अतः जो वास्तव में विद्वान हैं और दिव्य जीवन में अग्रणी हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी नेता, पति या भर्ता को स्वीकार नहीं करते।

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता (१८.६६) में कहा है—अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि—“मैं सम्पूर्ण पापों से तेरा उद्धार कर दूँगा।” श्रीकृष्ण किसी से भी भयभीत नहीं होते,

अपितु प्रत्येक प्राणी उन्हीं से भयभीत है। अतः वे ही अपने अधीन जीवात्माओं को सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। चूँकि नामधारी नेता या तानाशाह भौतिक प्रकृति के पूर्णतः वशीभूत हैं, अतः वे किसी को पूर्ण सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते हैं, भले ही वे झूठी प्रतिष्ठा के कारण ऐसा दम भरते रहें। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—लोग यह नहीं जानते कि जीवन का परम उत्कर्ष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अपना स्वामी मान लेने में है। समस्त राजनीतिक नेताओं, पतियों तथा संरक्षकों को चाहिए कि वे अपने आपको तथा अन्यो को सर्वशक्तिमान बताकर धोखा न देकर कृष्णाभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करें जिससे प्रत्येक व्यक्ति यह सीख सके कि परम पति श्रीकृष्ण के समक्ष किस प्रकार आत्मसमर्पण किया जाये।

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्चा भगवन्प्रतप्यते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

या—जो स्त्री; तस्य—उसका; ते—आपका; पाद—सरोरुह—चरणकमलों का; अर्हणम्—पूजा; निकामयेत्—पूर्णतया कामना करती है; सा—ऐसी स्त्री; अखिल—काम-लम्पटा—समस्त प्रकार की लौकिक कामनाएँ करते हुए भी; तत्—वह; एव—केवल; रासि—आप प्रदान करते हैं; ईप्सितम्—कुछ अन्य वाञ्छा; ईप्सितः—वाञ्छित; अर्चितः—पूजित; यत्—जिससे; भग्न-याच्चा—जो आपके चरणकमलों को छोड़कर अन्य वस्तुओं की कामना करती है और इस प्रकार भग्नचित्त हो जाती है; भगवन्—हे ईश्वर; प्रतप्यते—पीड़ा को प्राप्त होती है।

हे भगवन्, जो स्त्री आपके चरणकमल की आराधना विशुद्ध प्रेमवश करती है, आप उसकी समस्त कामनाओं को स्वतः ही पूरा करते हैं। यदि कोई स्त्री आपके चरणकमलों की पूजा किसी विशेष प्रयोजन के लिए करती है, तो भी आप उसकी कामनाओं को शीघ्र पूरा करते हैं, किन्तु अन्ततः वह टूटे हुए मन से पश्चात्ताप करती है। अतः किसी भौतिक लाभ के लिए आपके चरणकमलों की आराधना नहीं की जानी चाहिए।

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने विशुद्ध भक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है— *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्*—मनुष्यों को चाहिए कि वे भगवान् की आराधना किसी भौतिक कामना की पूर्ति के लिए न करें। भगवान् के चरणारविन्दों की सेवा करने का अर्थ है उन्हीं की इच्छानुकूल सेवा करना। अतः नव-दीक्षित भक्त को यह आदेश दिया जाता है कि गुरु तथा शास्त्रों के द्वारा बताये गये विधि-

नियमों के अनुसार ही भगवान् की पूजा करे। इस प्रकार से भक्ति करते हुए वह क्रमशः श्रीकृष्ण में आसक्त होता है और जब उसका भगवान् के लिए मौलिक सुप्त प्रेम जाग्रत हो जाता है, तो बिना किसी उद्देश्य के वह भगवान् की सेवा करने लगता है। ऐसी अवस्था भगवान् के साथ उसके सम्बन्ध की परमावस्था है। तब ईश्वर अयाचित ही अपने भक्त की सुख-सुविधा तथा संरक्षण का ध्यान रखते हैं। भगवद्गीता (९.२२) में श्रीकृष्ण यह वचन देते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

परमेश्वर अपनी भक्ति में पूर्णतः संलग्न रहने वालों का स्वतः ध्यान रखते हैं। भक्त के पास जो कुछ है, वे उसकी सभी प्रकार से रक्षा करते हैं और उसे जो कुछ चाहिए उसकी पूर्ति करते हैं। तो भला किसी भौतिक वस्तु के लिए भगवान् को क्यों परेशान किया? ऐसी प्रार्थनाएँ वृथा हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बताते हैं कि यदि कोई भक्त भगवान् से अपनी किसी इच्छा-पूर्ति की कामना करे, तो भी उसे सकाम-भक्त नहीं मानना चाहिए। भगवद्गीता (७.१६) में श्रीकृष्ण ने कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतवर्षभ ॥

“हे भरतश्रेष्ठ! विपदाग्रस्त, धन की इच्छा वाले, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरी भक्ति करते हैं।” जो आर्त तथा अर्थार्थी भगवान् के निकट दुख से छुटकारा पाने या कुछ धन प्राप्त करने के उद्देश्य से जाते हैं, वे सकाम-भक्त नहीं हैं। चाहे वे ऐसा प्रतीत होते हो। वे नौसिखिया भक्त होने के कारण अज्ञानी होते हैं। अन्यत्र श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं— उदारः सर्व एवैते—वे सभी उदार हैं। प्रारम्भ में भले ही किसी भक्त के मन में कोई कामना रहे, किन्तु कालान्तर में उसका लोप हो जाता है। अतः श्रीमद्भागवत का (२.३.१०) आदेश है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

“व्यापक बुद्धिवाला पुरुष चाहे वह सकाम हो या निष्काम अथवा मोक्ष चाहने वाला हो उसे सभी

प्रकार से श्रीभगवान् की आराधना करनी चाहिए।”

यदि किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की भौतिक कामना हो तो उसे श्रीभगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वही उसको पूर्ण करते हैं। यदि वह अपनी कामनापूर्ति के लिए किसी देवता के पास जाता है, तो उसे नष्ट-बुद्धि मानना चाहिए। भगवद्गीता (७.२०) में श्रीकृष्ण का कथन है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

“कामनाओं ने जिनके ज्ञान को हर लिया है, वे ही अन्य देवताओं की शरण लेकर अपने स्वभाव के अनुरूप उपासना के विधि-विधानों का पालन करते हैं।”

लक्ष्मी देवी उन समस्त भक्तों को जो भगवान् के पास कोई भौतिक कामना लेकर जाते हैं अपने अनुभव के आधार पर यही उपदेश देती हैं कि श्रीभगवान् कामदेव हैं, अतः उनसे किसी भौतिक वस्तु की याचना न की जाये। वे कहती हैं कि प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि बिना किसी कामना के भगवान् की सेवा करे। चूँकि श्रीभगवान् का प्रत्येक प्राणी के हृदय में वास है, अतः वे उन सबकी इच्छाओं को जानते हैं और समय आने पर वे उनकी समस्त आकांक्षाओं को पूरा भी करते हैं। अतः किसी प्रकार के वरदान प्राप्त करने की परवाह किये बिना हमें भगवान् की सेवा पर पूर्णरूपेण अवलंबित रहना चाहिए।

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-

स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिये धियः ।

ऋते भवत्यादपरायणात्र मां

विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

मत्-प्राप्तये—मेरी दया प्राप्त करने के लिए; अज—ब्रह्माजी; ईश—शिवजी; सुर—अन्य देवता जिनके स्वामी इन्द्र, चन्द्र तथा वरुण हैं; असुर-आदयः—असुर भी; तप्यन्ते—तप करते हैं; उग्रम्—कठिन; तपः—तपस्या; ऐन्द्रिये धियः—जिनके मस्तिष्क महत् इन्द्रियतृप्ति में लीन रहते हैं; ऋते—जब तक; भवत्-पाद-परायणात्—जो श्रीभगवान् के चरणारविन्द की सेवा में एकान्त भाव से तल्लीन रहते हैं; न—नहीं; माम्—मुझको; विन्दन्ति—प्राप्त करते हैं; अहम्—मैं; त्वत्—आप में; हृदयाः—जिनके हृदय; यतः—अतः; अजित—हे दुर्जेय।

हे अजेय परमेश्वर, मेरा आशीर्वाद पाने के लिए इन्द्रियसुख के अभिलाषी ब्रह्माजी तथा शिवजी आदि समस्त सुर-असुरगण घोर तपस्या करते हैं, किन्तु आपके चरणारविन्द की सेवा में

संलग्न भक्त के अतिरिक्त अन्य पर मैं अनुग्रह नहीं करती, चाहे वह कितना भी महान् क्यों न हो। चूँकि मैं निरन्तर आपको अपने हृदय में बसाये रहती हूँ इसलिए मैं भक्त के अतिरिक्त अन्य किसी पर अनुग्रह नहीं करती।

तात्पर्य : इस श्लोक में सौभाग्य की देवी लक्ष्मीजी स्पष्ट बताती हैं कि वे किसी संसारी व्यक्ति पर अनुग्रह नहीं करतीं। भले ही कोई संसारी व्यक्ति दूसरे संसारी व्यक्ति की दृष्टि में कितना ही ऐश्वर्यवान् क्यों न बन जाये, ऐसे ऐश्वर्य की दात्री स्वयं लक्ष्मी देवी न होकर सौभाग्य की देवी अंशरूपा भगवती दुर्गा देवी होती हैं। जिन्हें धन-धान्य की कामना होती है वे दुर्गादेवी की आराधना इस मंत्र से करते हैं—*धनं देहि रूपं देहि रूपपतिभाजं देहि*—“हे माता दुर्गे! मुझे धन, बल, यश, पत्नी इत्यादि दें।” देवी दुर्गा को प्रसन्न करके ऐसे वर प्राप्त किये जा सकते हैं, किन्तु वे क्षणिक होने के कारण माया-सुख ही प्रदान करने वाले होते हैं। जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने कहा है—*मायासुखाय भरमुद्रहतो विमूढान्*— जो भौतिक लाभों के लिए अत्यन्त श्रम करते हैं, वे विमूढ़ हैं, क्योंकि ऐसा सुख स्थायी नहीं होता। दूसरी ओर प्रह्लाद तथा ध्रुव महाराज जैसे भक्त हैं, जिन्होंने अद्वितीय ऐश्वर्य प्राप्त किया। किन्तु वह माया-सुख नहीं था। जब किसी भक्त को अद्वितीय ऐश्वर्य प्राप्त होता है, तो यह नारायण के हृदय में वास करने वाली ऐश्वर्य की देवी का प्रत्यक्ष दान होता है।

देवी दुर्गा की स्तुति करके प्राप्त किया हुआ ऐश्वर्य क्षणिक होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२३) में कहा गया है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—अल्पबुद्धि प्राणी ही क्षणिक सुख की कामना करते हैं। हमें ज्ञात है कि भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के एक शिष्य ने अपने गुरु की सम्पत्ति का भोग करना चाहा तो दयालु गुरु ने सहर्ष उसे ऐसा करने की अनुमति तो दे दी, किन्तु विश्व भर में श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के उपदेश देने की अपनी शक्ति नहीं दी। उपदेश देने की यह विशिष्ट शक्ति केवल उस भक्त को दी जाती है जो अपने गुरु से किसी संसारी वस्तु की कामना नहीं करता वरन् गुरु की सेवा ही करना चाहता है। दृष्टान्त के रूप में असुर रावण की कथा सटीक होगी। यद्यपि रावण ने ऐश्वर्य की देवी सीता देवी को भगवान् रामचन्द्र के अधिकार से हरण कर लेना चाहा, किन्तु वह ऐसा नहीं कर पाया। उसने जिस सीता देवी को बलपूर्वक हरण किया वह वास्तविक सीता देवी न होकर माया रूप अथवा दुर्गा देवी थी। फलस्वरूप ऐश्वर्य की देवी की कृपा प्राप्त करने के बजाय दुर्गा देवी

की शक्ति से रावण सपरिवार विनष्ट हो गया (*सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका*) ।

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप; मम—मेरे; अपि—भी; अच्युत—च्युत न होने वाले; शीर्ष्णि—शिर पर; वन्दितम्—पूजित; कर-
अम्बुजम्—आपके कर-कमल; यत्—जो; त्वत्—आपके द्वारा; अधायि—रखे गये; सात्वताम्—भक्तों के ऊपर; बिभर्षि—
आप पालन करते हैं; माम्—मुझको; लक्ष्म—आपके वक्षस्थल पर चिह्न; वरेण्य—हे पूज्य; मायया—माया से, भ्रम से; कः—
कौन; ईश्वरस्य—ईश्वर का; ईहितम्—इच्छाएं; ऊहितुम्—तर्क द्वारा समझना; विभुः—समर्थ है; इति—इस प्रकार ।

हे अच्युत, आपका कर-कमल सभी वरदानों का स्रोत है। अतः आपके शुद्ध भक्त उसकी पूजा करते हैं और आप अत्यन्त दयापूर्वक उनके शिरों पर अपना हाथ रखते हैं। मेरी भी यही कामना है कि आप मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखें, यद्यपि आप पहले से ही अपने वक्षस्थल पर श्रीलक्ष्म रूप में मुझे धारण करते हैं, किन्तु इस सम्मान को मैं मिथ्या प्रतिष्ठा की तरह मानती हूँ। आप अपनी वास्तविक दया भक्तों पर ही दिखाते हैं, मुझ पर नहीं। निस्सन्देह, आप सर्वसमर्थ नियंता हैं, आपके प्रयोजन को भला कौन समझ सकता है ?

तात्पर्य : शास्त्रों में कई स्थलों पर श्रीभगवान् को वक्षस्थल में सतत वास करने वाली अपनी पत्नी की अपेक्षा भक्तों के प्रति अधिक दयालु दिखाया गया है। *श्रीमद्भागवत* (११.१४.१५) में कहा गया है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।

न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥

यहाँ श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि उन्हें ब्रह्मा, शिव, संकर्षण, लक्ष्मी, यहाँ तक कि स्वयं की अपेक्षा उनके भक्त अधिक प्रिय हैं। *श्रीमद्भागवत* (१०.९.२०) में अन्यत्र शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंप्रया ।

प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥

सबों के मोक्षदाता परमेश्वर ब्रह्माजी, शिवजी, यहाँ तक कि अपनी पत्नी और अपने शरीर में वास

करने वाली ऐश्वर्य की देवी की अपेक्षा गोपियों के प्रति अधिक दयालु दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह श्रीमद्भागवत का यह भी कहना है (१०.४७.६०)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः

स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाद् ब्रजसुन्दरीणाम् ॥

“गोपियों को भगवान् से वे सभी वर प्राप्त हुए जो न तो लक्ष्मीजी को और न स्वर्ग की परम सुन्दरी नर्तकियों को प्राप्त हो सके। रास-नृत्य में भगवान् ने परम भाग्यशाली गोपियों के कंधों पर अपना हाथ रखकर और प्रत्येक के साथ नृत्य करके परम अनुकम्पा प्रदर्शित की। भगवान् की अहैतुकी कृपा प्राप्त करने वाली गोपियों की कोई बराबरी नहीं कर सकता।”

श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा गया है कि गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण किये बिना किसी को भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का वास्तविक अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता। यहाँ तक कि ऐश्वर्य की देवी वर्षों तक कठिन तपस्या करके भी गोपियों का सा अनुग्रह नहीं पा सकीं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस बात की विवेचना व्यंकट भट्ट से चैतन्यचरितामृत (मध्य ९.१११-१३१) में की है—“चैतन्य महाप्रभु ने व्यंकट भट्ट से पूछा ‘तुम्हारी आराध्य देवी लक्ष्मी सदैव नारायण के वक्षस्थल में विराजमान रहती हैं और निश्चित रूप से सृष्टि की सबसे पवित्र महिला हैं। किन्तु मेरे प्रभु श्रीकृष्ण एक गोप हैं, जो गायों को चराने में लगे रहते हैं। तो फिर वह कौन सा कारण है कि ऐसी पतिव्रता पत्नी मेरे प्रभु की संगिनी बनना चाहती है? मात्र श्रीकृष्ण का संग-लाभ उठाने के निमित्त लक्ष्मी देवी ने वैकुण्ठ का दिव्य सुख छोड़कर दीर्घकाल तक विधिविधानों तथा व्रतों का पालन करके असीम कठोर तप किया।’

व्यंकट भट्ट ने उत्तर दिया, ‘भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् नारायण एक ही हैं, किन्तु श्रीकृष्ण की लीलाएँ क्रीड़ा रूप होने के कारण अधिक मधुर हैं। वे श्रीकृष्ण की शक्तियों के लिए अधिक मनमोहक हैं। चूँकि श्रीकृष्ण तथा नारायण दोनों एक ही पुरुष हैं, अतः कृष्ण के साथ लक्ष्मी का मिलन उनके पातिव्रत्य को नष्ट नहीं करता। यह अत्यन्त कुतूहलपूर्ण है कि लक्ष्मी ने जानबूझकर श्रीकृष्ण से मिलाप करना चाहा। ऐश्वर्य की देवी ने सोचा कि श्रीकृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करने से उनका पतिव्रत भंग

नहीं होगा, वरन् उन्हें रास-नृत्य का लाभ प्राप्त हो सकेगा। यदि वे स्वयं श्रीकृष्ण के साथ भोग करना चाहती थी तो इसमें क्या दोष है? आप क्यों उपहास कर रहे हैं?’

“चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, ‘मैं यह समझता हूँ कि लक्ष्मीजी में कोई दोष नहीं है, किन्तु तो भी वे रास-नृत्य में प्रविष्ट नहीं हो पाईं। ऐसा शास्त्रों से प्रकट होता है। दण्डकारण्य में वेदों के ज्ञानी जन भगवान् श्रीरामचन्द्र से मिले और उनकी तपस्या के कारण उन्हें रास-नृत्य में प्रवेश करने की अनुमति मिल गई। किन्तु क्या तुम बता सकते हो कि ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मीजी को यह सुअवसर क्यों नहीं प्राप्त हो सका?’

“इस पर व्यंकट भट्ट का उत्तर था, ‘मैं एक तुच्छ प्राणी हूँ, अतः मैं इस घटना के रहस्य को नहीं बता सकता। मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ मेरा ज्ञान सीमित है और मैं सदैव अशान्त रहता हूँ। भला मैं परमात्मा की लीलाओं को कैसे समझ सकता हूँ? उनकी लीलाएँ लाखों सागरों से भी अगाध हैं।’

“श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, ‘श्रीकृष्ण में एक विशेष गुण हैं। वे अपने व्यक्तिगत माधुर्य प्रेम से सबके हृदयों को आकृष्ट कर लेते हैं। ब्रजलोक अथवा गोलोक वृन्दावन के वासियों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त हो सकता है। किन्तु उस लोक के वासी इस तथ्य से अपरिचित हैं कि श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं। फलतः नन्द महाराज, यशोदा देवी तथा गोपियाँ उन्हें अपने प्रिय पुत्र या प्रेमी के रूप में मानती हैं। माता यशोदा उन्हें पुत्रवत् मानती हैं और कभी-कभी उन्हें ऊखल से बाँध देती हैं। गोपजन उन्हें सामान्य बालक मानते हैं और वे उनके कन्धों पर चढ़ जाते हैं। गोलोक वृन्दावन में श्रीकृष्ण को प्रेम करने के अतिरिक्त कोई और कुछ भी नहीं चाहता।’

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभूमि के निवासियों की कृपादृष्टि के बिना श्रीकृष्ण की संगति नहीं मिल सकती। अतः यदि कोई चाहता है कि श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष मोक्ष प्रदान करें तो उसे वृन्दावनवासियों की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि वे भगवान् के विशुद्ध भक्त हैं।

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति. ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

रम्यके च—रम्यकवर्ष में भी; भगवतः—श्रीभगवान् का; प्रिय-तमम्—अत्यन्त प्रिय; मात्स्यम्—मछली; अवतार-रूपम्—अवतार स्वरूप; तत्-वर्ष-पुरुषस्य—उस भूभाग के शासक; मनोः—मनु के; प्राक्—इसके पूर्व (चाक्षुष-मन्वन्तर के अन्त में);

प्रदर्शितम्—प्रदर्शित; सः—वह मनु; इदानीम् अपि—यहाँ तक कि आज भी; महता भक्ति-योगेन—महती भक्ति के द्वारा; आराधयति—श्रीभगवान् की आराधना करता है; इदम्—यह; च—तथा; उदाहरति—जप करता है।

शुकदेव गोस्वामी आगे कहते हैं—रम्यकवर्ष में पिछले मन्वन्तर (चाक्षुष) के अन्त में श्रीभगवान् मत्स्य रूप में प्रकट हुए, जहाँ के अधिपति वैवस्वत मनु हैं। वे आज भी मत्स्य भगवान् की शुद्ध भक्ति करते हैं और निम्नलिखित मंत्र का जप करते हैं।

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ओम्—हे ईश्वर; नमः—नमस्कार है; भगवते—श्रीभगवान् को; मुख्य-तमाय—प्रथम अवतार को; नमः—मेरा नमस्कार है; सत्त्वाय—सत्त्व रूप को; प्राणाय—जीवन के मूलाधार को; ओजसे—इन्द्रियों के ओजस्वरूप; सहसे—समस्त बुद्धि बल के स्रोत; बलाय—शारीरिक शक्ति के उद्गम; महा-मत्स्याय—महा मत्स्यावतार को; नमः—नमस्कार है; इति—इस प्रकार।

मैं सत्त्व स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ। वे प्राण, शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा ज्ञानेन्द्रिय शक्ति के मूल स्रोत हैं। समस्त अवतारों में प्रकट होने वाले वे महामत्स्यावतार हैं। मैं पुनः उनको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील जयदेव गोस्वामी का गीत है—

प्रलयो पयोधि-जले धृतवान् असि वेदं

विहित-वहित्र-चरित्रम् अखेदम्

केशव धृत-मीन-शरीर जय जयदीश हरे।

सृष्टि-रचना के तुरन्त बाद यह सारा ब्रह्माण्ड जल में मग्न हो गया। उस समय वेदों की रक्षा के लिए भगवान् श्रीकृष्ण (केशव) ने महामत्स्य के रूप में अवतार लिया। इसीलिए मनु ने मत्स्य भगवान् को मुख्यतम् अर्थात् प्रथम अवतार ग्रहण करनेवाला कहा है। सामान्यतः मत्स्य को तमो तथा रजो गुणों से युक्त माना जाता है, किन्तु हमें यह समझना आवश्यक है कि श्रीभगवान् का प्रत्येक अवतार पूर्णतः दिव्य होता है। परमात्मा के मूल दिव्य गुण में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। इसलिए सत्त्वाय शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है दिव्य धरातल पर विशुद्ध सत्त्व। भगवान् के अनेक अवतार हैं—वराहमूर्ति, कूर्ममूर्ति, हयग्रीवमूर्ति इत्यादि। किन्तु इन्हें भौतिक नहीं मानना चाहिए। वे शुद्ध सत्त्व पद पर सदैव अवस्थित रहते हैं।

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-

रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।

स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय-

नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; बहिः—बाहर; च—भी; अखिल-लोक-पालकैः—विभिन्न लोकों, समाजों, राज्यों आदि के नायकों द्वारा; अदृष्ट-रूपः—अदृश्य; विचरसि—विचरण करते हो; उरु—अत्यन्त महान्; स्वनः—जिसकी ध्वनि (वैदिक मंत्र); सः—वह; ईश्वरः—परम नियन्ता; त्वम्—आपको; यः—जो; इदम्—वह; वशे—वश में; अनयत्—ले आया; नाम्ना—विभिन्न नामों से, जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र; यथा—ठीक वैसा ही; दारुमयीम्—काष्ठ की बनी; नरः—मनुष्य; स्त्रियम्—पुतली को ।

हे ईश्वर, जिस प्रकार एक नटकठ पुतलियों को तथा पति अपनी पत्नी को वश में रखता है, उसी प्रकार आप इस ब्रह्माण्ड की समस्त जीवात्माओं को, चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, अपने वश में रखने वाले हैं। यद्यपि आप जन-जन के हृदयों के भीतर परम साक्षी के रूप में और उनके बाहर भी निवास करते हैं, किन्तु समाज, जाति तथा देश के तथाकथित नेता आपको समझ नहीं पाते। केवल वैदिक मंत्रों की स्वरलहरियों को सुनने वाले आपको जान पाते हैं।

तात्पर्य : श्रीभगवान् अन्तर्बहिः अर्थात् सबों के भीतर और बाहर विद्यमान रहते हैं। भगवान् की माया से जनित भ्रम को जीतकर उनकी अन्तः तथा बहिः उपस्थिति अनुभव की जा सकती है। श्रीमद्भागवत (१.८.१९) में श्रीमती कुन्तीदेवी ने बताया है कि इस जगत में श्रीकृष्ण नटो नाट्यधरो यथा—नाटक के नट की भाँति—प्रकट होते हैं— भगवद्गीता (१८.६१) में श्रीकृष्ण कहते हैं— ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—“हे अर्जुन, ईश्वर प्राणीमात्र के हृदय में स्थित हैं।” ईश्वर प्रत्येक के हृदय में और इसके बाहर भी वास करते हैं। हृदय के भीतर वे परमात्मा हैं, जो निदेशक तथा साक्षी तुल्य हैं। यद्यपि ईश्वर हमारे हृदयों में वास करते हैं, किन्तु फिर भी अज्ञानी कहते फिरते हैं कि मैं ईश्वर को नहीं देख सकता; मुझे उनके दर्शन कराओ।

प्रत्येक प्राणी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वश में उसी प्रकार है, जिस प्रकार नाचने वाली कठ पुतलियाँ नट के वश में रहती हैं, अथवा जैसे पति के वश में पत्नी। स्त्री की उपमा पुतली (दारुमयी) से दी गई है, क्योंकि वह पराधीन है। मनुष्य उस पर सदैव शासन करता है। तो भी, झूठी प्रतिष्ठावश स्त्रियों का एक वर्ग स्वतंत्र रहना चाहता है। स्त्रियाँ तो स्त्रियाँ, समस्त जीवात्माएँ प्रकृति (स्त्री) हैं, अतः वे भगवान् पर आश्रित हैं, जैसाकि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में स्वयं कहा है (अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं

विद्धि मे पराम्) जीवात्मा कभी भी स्वतंत्र नहीं है। सभी दशाओं में वह भगवान् की कृपा पर आश्रित है। भगवान् ने मानव समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन वर्णों में विभाजित किया और आदेश दिया कि अपने-अपने वर्ण के नियमों का पालन करें। इस प्रकार समाज के सभी सदस्य सदैव परम पुरुष के वश में रहते हैं। फिर भी कुछ मूर्ख लोग ईश्वर की सत्ता को नकारते हैं।

आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है भगवान् की तुलना में अपनी अधीनस्त स्थिति को समझना। जब मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो वह श्रीभगवान् की शरण ग्रहण करता है और माया के चंगुल से छुटकारा पा लेता है। दूसरे शब्दों में, जब तक मनुष्य भगवान् के चरणकमलों में आत्मसमर्पण नहीं कर देता, तब तक माया उसे विभिन्न रूपों में वशीभूत करती रहेगी। इस भौतिक जगत में कोई इससे इनकार नहीं कर सकता कि वह वश में है। भगवान् नारायण इस भौतिक जगत से परे हैं और वही सबको वश में रखते हैं। इस वैदिक मंत्र से इसकी पृष्टि होती है—*एको ह वै नारायण आसीत्*। मूर्ख लोग नारायण को सामान्य भौतिक जगत के धरातल पर मानते हैं। वे जीवात्मा की प्राकृतिक स्वाभाविक स्थिति से परिचित नहीं हैं, इसलिए वे दरिद्रनारायण, स्वामीनारायण या मिथ्यानारायण जैसे शब्द गढ़ लेते हैं। किन्तु नारायण वास्तव में सबों के परम नियन्ता हैं। यही ज्ञान आत्म-साक्षात्कार है।

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा

हित्वा यतन्तोऽपि पृथक्समेत्य च ।

पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः

सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको (आपको); लोक-पालाः—इस ब्रह्माण्ड के महान् नेता, जिनमें ब्रह्मा प्रथम हैं; किल—अन्यों की क्या कहें; मत्सर-ज्वराः—जिन्हें ईर्ष्या का ज्वर चढ़ा हुआ है; हित्वा—परित्याग करके; यतन्तः—यत्न करते हुए; अपि—यद्यपि; पृथक्—अलग से; समेत्य—सम्मिलित; च—भी; पातुम्—रक्षा करने में; न—नहीं; शेकुः—समर्थ; द्वि-पदः—दो पैर वाले; चतुः-पदः—चार पाँव वाले; सरीसृपम्—रेंगने वाले; स्थाणु—जड़; यत्—जो भी; अत्र—इस भौतिक जगत के भीतर; दृश्यते—दीख पड़ता है।

हे ईश्वर, इस ब्रह्माण्ड के बड़े से बड़े नेता, यथा ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं से लेकर इस संसार के राजनीतिक नेताओं तक, सभी आपकी सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु हैं। किन्तु आपकी सहायता के बिना वे न तो पृथक्-पृथक्, न ही सम्मिलित रूप से इस ब्रह्माण्ड के असंख्य जीवों का पालन कर सकते हैं। आप समस्त मनुष्यों, पशुओं (यथा गाय, गधा) तथा समस्त

वनस्पतियों, रेंगने वाले जीवों, पक्षियों, पर्वतों तथा इस संसार में जो भी दिखाई पड़ता है उसके एकमात्र वास्तविक पालक हैं।

तात्पर्य : संसारी व्यक्तियों में ईश्वर की सत्ता से स्पर्धा करना फैशन बन चुका है। जब नामधारी विज्ञानी अपनी प्रयोगशालाओं में जीव की सृष्टि करने का प्रयास करते हैं, तो उनका एकमात्र उद्देश्य श्रीभगवान् की प्रतिभा एवं शक्ति को चुनौती देना होता है। यही माया कहलाती है। यह वैकुण्ठलोक में भी व्याप्त है जहाँ ब्रह्मा, शिव इत्यादि महान् देवता वास करते हैं। इस संसार में अपने समस्त प्रयासों के असफल होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति झूठी प्रतिष्ठा से फूला रहता है। जब दिखावे के लिए गरीबों की सहायता करने वाले नामधारी परोपकारियों के पास कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य जाते हैं, तो वे कहते हैं कि आप लोग वृथा ही अपना समय नष्ट करते हैं, हम लोग ही असंख्य भूखे जनसमूह का भरण करने वाले हैं। दुर्भाग्यवश उनके इने-गिने प्रयास, चाहे व्यष्टि रूप से हों या समष्टि रूप में, किसी समस्या का हल नहीं ढूँढ पाते।

कभी-कभी तथाकथित स्वामी लोग दरिद्रों को भोजन देने के अत्यन्त इच्छुक रहते हैं; वे उन्हें दरिद्रनारायण समझते हैं। वे मूल परम-नारायण की अपेक्षा कृत्रिम दरिद्रनारायण की सेवा को वरीयता प्रदान करते हैं। उनका कहना है कि भगवान् नारायण की सेवा को बढ़ावा देने की अपेक्षा संसार के भूखे मनुष्यों की सेवा करना श्रेष्ठ है। दुर्भाग्यवश ऐसे भौतिकतावादी, व्यष्टि रूप से या संयुक्त राष्ट्र के रूप में समष्टि रूप में अपनी योजनाएँ पूरी नहीं कर पाते। सत्य तो यह है कि करोड़ों मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों तथा वृक्षों—यही नहीं सम्पूर्ण जीवात्माओं—का भरण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा अकेले ही किया जाता है। *एको बहूनां यो विदधाति कामान्*—एक ही श्रीभगवान् सभी जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं। भगवान् नारायण की सत्ता को चुनौती देना असुरों का कार्य है। किन्तु कभी-कभी माया के वशीभूत होकर सुर अथवा भक्तजन भी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने को सारे ब्रह्माण्ड का नियामक घोषित करने लगते हैं। ऐसी घटनाओं का उल्लेख *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कन्ध में मिलता है जहाँ शुकदेव गोस्वामी बताते हैं कि किस प्रकार ब्रह्माजी और राजा इन्द्र को गर्व होता है और अन्त में वे श्रीकृष्ण द्वारा दण्डित होते हैं।

भवान्युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
 क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
 मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा
 तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

भवान्—आप; युग-अन्त-अर्णवे—प्रलयकालीन सागर में; ऊर्मि-मालिनि—उत्ताल तरंगों के स्वामी; क्षोणीम्—पृथ्वी को; इमाम्—इस; ओषधि-वीरुधाम्—समस्त प्रकार की औषधियों एवं लताओं को; निधिम्—आगार, संग्रह; मया—मेरे; सह—साथ; उरु—महान्; क्रमते—आप भ्रमण करते रहे; अज—हे अजन्मा; ओजसा—गतिपूर्वक; तस्मै—उसको; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का; प्राण-गण-आत्मने—जीवन का परम स्रोत; नमः—नमस्कार है; इति—इस प्रकार ।

हे सर्वशक्तिमान ईश्वर, कल्पान्त में यह पृथ्वी, जो सभी प्रकार की जड़ी बूटियों तथा वृक्षों की आगार है, जल की बाढ़ से प्रलयकारी तरंगों के नीचे डूब गई। उस समय आपने पृथ्वी सहित मेरी रक्षा की और अत्यन्त वेग से आप समुद्र में भ्रमण करते रहे। हे अजन्मा, आप इस समग्र सृष्टि के वास्तविक पालनकर्ता हैं, इसलिए आप ही सभी जीवात्माओं के कारणस्वरूप हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : ईर्ष्यालु व्यक्ति यह नहीं समझ पाते कि ईश्वर कितने आश्चर्यजनक ढंग से इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उसका पालन और फिर संहार करते हैं। किन्तु ईश्वर के भक्तजन इसे अच्छी तरह समझते हैं। वे यह देख पाने में समर्थ हैं कि इस भौतिक प्रकृति के अद्भुत कार्यों के पीछे कैसे ईश्वर का हाथ है।

भगवद्गीता (९.१०) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

“हे कुन्तीपुत्र! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को रचती है। इस के अनुसार इस जगत का बारम्बार सृजन और संहार होता है।” प्रकृति के समस्त विस्मयकारी परिवर्तन श्रीभगवान् के निरीक्षण में घटित होते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति इसे नहीं देख पाते, किन्तु जो भक्त हैं, वे विनम्र तथा अशिक्षित होने पर भी प्रकृति की इन क्रियाओं के पीछे भगवान् के हाथ को देख पाते हैं।

हिरण्ययेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः
 पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

हिरण्मये—हिरण्मयवर्ष में; अपि—निस्सन्देह; भगवान्—श्रीभगवान्; निवसति—निवास करते हैं; कूर्म-तनुम्—कछुए का शरीर; विभ्राणः—प्रकट करते हुए; तस्य—श्रीभगवान् का; तत्—वह; प्रिय-तमाम्—सर्वाधिक प्रिय; तनुम्—शरीर; अर्यमा—हिरण्मय वर्ष का प्रमुख वासी अर्यमा के; सह—साथ; वर्ष-पुरुषैः—उस भूभाग के व्यक्ति; पितृ-गण-अधिपतिः—जो पितरों का प्रतिनिधि है; उपधावति—भक्तिपूर्वक पूजा करता है; मन्त्रम्—मंत्र को; इमम्—इस; च—भी; अनुजपति—जपता है।

शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—हिरण्मयवर्ष में भगवान् विष्णु कच्छप रूप में निवास करते हैं। इस परम प्रिय एवं सुन्दर रूप की आराधना हिरण्मयवर्ष के प्रमुख निवासी अर्यमा तथा उस वर्ष के अन्य वासियों द्वारा सदैव की जाती है। वे निम्नलिखित स्तुति करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में प्रियतम (सर्वाधिक प्रिय) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। प्रत्येक भक्त भगवान् के किसी विशेष रूप को ही अपना प्रिय समझता है। कुछ सौन्दर्यप्रेमी नास्तिक विचारधारा के कारण ऐसा सोचते हैं कि भगवान् के कूर्म, शूकर तथा मत्स्य अवतार अति सुन्दर नहीं हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि भगवान् का प्रत्येक रूप अत्यन्त तेजवान है। चूँकि उनके ऐश्वर्यों में से अनन्त सौन्दर्य एक है, अतः भगवान् के समस्त अवतार अत्यन्त सुन्दर हैं और भक्त लोग उसकी सराहना करते हैं। किन्तु जो भगवान् के भक्त नहीं हैं, वे श्रीकृष्ण के अवतारों को सामान्य संसारी प्राणी मानते हैं, फलतः वे सुन्दर तथा असुन्दर में अन्तर पाते हैं। प्रत्येक भक्त भगवान् के किसी एक विशेष रूप को पूजता है, क्योंकि वह उसी रूप में उन्हें देखना चाहता है। ब्रह्म-संहिता (५.३३) में कहा गया है—*अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपमाद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।* भगवान् का परम सुन्दर रूप सदैव यौवनपूर्ण रहता है। विशिष्ट सम्प्रदाय के सेवक उसी रूप को परम सुन्दर मानकर निरन्तर भक्ति करते हैं।

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ओम्—हे ईश्वर; नमः—नमस्कार है; भगवते—श्रीभगवान् को; अकूपाराय—कूर्म के रूप में; सर्व-सत्त्व-गुण-विशेषणाय—जिसका रूप शुद्ध सत्त्वमय है; अनुपलक्षित-स्थानाय—आपको, जिनका स्थान अनिश्चित है; नमः—नमस्कार है; वर्ष्मणे—काल की मर्यादा के बाहर आपको; नमः—आदरपूर्वक नमस्कार; भूम्ने—उस महान् को जो सर्वत्र जा सकता है; नमः नमः—बारम्बार नमस्कार है; अवस्थानाय—सर्वाधार; नमः—नमस्कार है; ते—आपको।

हे प्रभो, कच्छप स्वरूप आपको मेरा सादर नमस्कार है। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। आप भौतिकता से पूर्णतः रहित तथा परम सत्त्व में स्थित हैं। आप जल में विचरण करते रहते हैं, किन्तु कोई आपका पता नहीं लगा पाता, अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। अपनी

दिव्य स्थिति के कारण आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य से बँधे नहीं रहते। आप सर्वत्र सर्वाधार रूप में उपस्थित रहते हैं, अतः मैं बारम्बार आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः—आध्यात्मिक जगत में सबसे ऊपर के लोक गोलोक में भगवान् सदैव रहते हैं। इसके साथ ही साथ वे सर्वव्यापी हैं। ऐसा विरोधाभास केवल श्रीभगवान् पर ही लागू हो सकता है जो समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। भगवान् की सर्वव्यापकता की पुष्टि भगवद्गीता से (१८.६१) होती है जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—“हे अर्जुन! परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित हैं।” भगवद्गीता में ही अन्यत्र (१५.१५) वे कहते हैं—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च—मैं सब प्राणियों के हृदय में बैठा हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और विस्मृति होती है। अतः यद्यपि भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं, किन्तु वे सामान्य नेत्रों से नहीं देखे जा सकते। जैसाकि अर्यमा कहते हैं, श्रीभगवान् अनुपलक्षितस्थान हैं अर्थात् उनको कोई ढूँढ नहीं सकता। यही श्रीभगवान् की महानता है।

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-

मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।

सङ्ख्या न यस्यास्त्यथोपलम्भनात्-

तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; रूपम्—रूप; एतत्—यह; निज-मायया अर्पितम्—आपकी माया से प्रकट; अर्थ-स्वरूपम्—यह समस्त दृश्य सार्वभौम अभिव्यक्ति (प्रकाश); बहु-रूप-रूपितम्—अनेक रूपों में प्रकट; सङ्ख्या—गणना; न—नहीं; यस्य—जिसकी; अस्ति—है; अयथा—झूठे ही; उपलम्भनात्—देखने से; तस्मै—उसे (भगवान् को); नमः—मेरा नमस्कार; ते—आपको; अव्यपदेश—मानसिक चिन्ता द्वारा निश्चित न हो सकने वाला, अनिवर्चनीय; रूपिणे—जिसका सत्य रूप।

हे भगवन्, यह विराट दृश्य अभिव्यक्ति आपकी अपनी सृजनात्मक शक्ति का प्रदर्शन है।

इसके अन्तर्गत अनन्त रूप आपकी बहिरंगा शक्ति (माया) का प्रदर्शन मात्र है, अतः यह विराट रूप आपका वास्तविक रूप नहीं है। आपके वास्तविक रूप का दर्शन तो केवल दिव्य भावना भावित भावित भक्तजन कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : मायावादी दार्शनिक भगवान् के विराट रूप को ही सत्य तथा उनके व्यक्तिगत स्वरूप को मायास्वरूप मानते हैं। उनकी त्रुटि एक सरल उदाहरण द्वारा समझी जा सकती है। अग्नि में तीन तत्त्व

होते हैं—शक्तिस्वरूप उष्मा, प्रकाश तथा स्वयं अग्नि। यह कोई भी समझ सकता है कि मूलतः अग्नि ही वास्तविक है और उष्मा तथा प्रकाश अग्नि की शक्ति मात्र हैं। वे अग्नि की स्वरूपहीन शक्तियाँ होने के कारण अवास्तविक रूप हैं। केवल अग्नि में रूप होता है, अतः यही उष्मा तथा प्रकाश का वास्तविक रूप है। *भगवद्गीता* (९.४) में श्रीकृष्ण कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना—* मेरी प्राकृत इन्द्रियों से अतीत अव्यक्त रूप द्वारा यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। इस प्रकार भगवान् का अव्यक्त रूप अग्नि की उष्मा तथा प्रकाश के प्रसार की भाँति है। *भगवद्गीता* में भगवान् का यह भी वचन है—*मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः—* यह सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि श्रीकृष्ण की शक्ति पर आश्रित है, चाहे वह भौतिक हो, आध्यात्मिक या तटस्था शक्ति हो। किन्तु उनका रूप उनकी शक्ति के विस्तार से रहित है, अतः वे व्यक्तिगत रूप में उपस्थित नहीं हैं। श्रीभगवान् की शक्ति का अकल्पनीय विस्तार अचिन्त्य शक्ति कहलाता है। अतः बिना भक्त बने कोई भी भगवान् के सत्य रूप को नहीं जान पाता।

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्धिदं

चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।

द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-

द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

जरायु-जम्—गर्भ से उत्पन्न; स्वेद-जम्—पसीने से उत्पन्न; अण्ड-ज—अंडे से उत्पन्न; उद्धिदम्—पृथ्वी से उत्पन्न; चर-अचरम्—चर तथा अचर (स्थावर तथा जंगम); देव—देवता; ऋषि—ऋषि; पितृ—पितृलोक के वासी; भूतम्—वायु, अग्नि जल तथा क्षिति नामक तत्त्व; ऐन्द्रियम्—सभी इन्द्रियाँ; द्यौः—उच्चतर लोक; खम्—आकाश; क्षितिः—पृथ्वी; शैल—पर्वत; सरित्—नदियाँ; समुद्र—सागर; द्वीप—द्वीप; ग्रह-ऋक्ष—नक्षत्र तथा ग्रह; इति—इस प्रकार; अभिधेयः—विभिन्न नामों से अभिहित; एकः—एक।

हे प्रिय प्रभु, आप अपनी विविध शक्तियाँ अनगिनत रूपों में प्रदर्शित करते हैं—जैसे कि गर्भ से अंडे से तथा स्वेद से उत्पन्न होने वाले जीव; धरती से पौधों एवं वृक्षों के रूप में विकसित होने वाले जीव; देवता, विद्वान्, ऋषि-मुनि तथा पितृओं सहित चर तथा अचर सारे जीव; बाह्यावकाश, स्वर्गलोक सहित उच्चतर ग्रहमंडल एवं पर्वत, नदियाँ, महासागरों तथा द्वीपों सहित पृथ्वी ग्रह इत्यादि।

तात्पर्य : यह श्लोक *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* के सिद्धान्त को पूर्णतया नकारता है, जिसके अनुसार ब्रह्म सत्य है, जबकि यह भौतिक जगत अपने महत्-पदार्थों समेत मिथ्या (असत्य) है। कुछ भी

मिथ्या नहीं है। एक वस्तु स्थायी हो सकती और दूसरी अस्थायी, किन्तु स्थायी तथा अस्थायी दोनों ही तथ्य हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई क्षण भर के लिए क्रुद्ध हो जाता है, तो कोई यह नहीं कहेगा कि उसका क्रोध असत्य है। यह केवल क्षणिक है। दैनिक जीवन में अनुभव की जाने वाली प्रत्येक वस्तु इसी प्रकार की है; यह क्षणिक होकर भी सत्य है।

इस श्लोक में विभिन्न स्रोतों से आगत नाना प्रकार के जीवात्माओं का सुस्पष्ट वर्णन मिलता है। इनमें से कुछ गर्भ से उत्पन्न होते हैं और कुछ जैसे कुछ कीट मनुष्य के पसीने से; अन्य अण्डे से और कुछ पृथ्वी से अंकुरित होते हैं। जीवात्मा अपने पूर्वकर्मों के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में जन्म लेता है। यद्यपि उसका शरीर भौतिक होता है, किन्तु यह कभी मिथ्या नहीं होता। यह किसी भी व्यक्ति को स्वीकार्य नहीं होगा कि मनुष्य का भौतिक शरीर मिथ्या है, इसलिए हत्या की कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। हमारे अस्थायी शरीर अपने कर्मों के अनुसार हमें प्राप्त होते हैं और इसी शरीर से हमें जीवन की वेदनाओं और आनन्दों को भोगना पड़ता है। हमारे शरीर मिथ्या नहीं कहे जा सकते; हाँ वे अस्थायी अवश्य हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि भगवान् की शक्ति स्वयं भगवान् की भाँति स्थायी है, भले ही यह शक्ति कभी प्रकट रहे तो कभी अप्रकट रहे। जैसाकि वेदों में सार-रूप में कहा गया है—*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है।

यस्मिन्नसङ्ख्येयविशेषनाम-

रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।

सङ्ख्या यया तत्त्वदृशापनीयते

तस्मै नमः साङ्ख्यनिदर्शनाय ते इति ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें (श्रीभगवान् में); असङ्ख्येय—अगणित; विशेष—विशेष; नाम—नाम; रूप—रूप; आकृतौ—शारीरिक स्वरूप से युक्त; कविभिः—विद्वान् व्यक्तियों के द्वारा; कल्पिता—कल्पित की गई; इयम्—यह; सङ्ख्या—गिनती; यया—जिसके द्वारा; तत्त्व—सत्य का; दृशा—ज्ञान से; अपनीयते—निकाल लेते हैं; तस्मै—उसे; नमः—नमस्कार; साङ्ख्य-निदर्शनाय—जो सांख्य दर्शन के उद्घाटक हैं; ते—आपको; इति—इस प्रकार।

हे प्रभो, आपका नाम, रूप तथा आकृति असंख्य रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि आप कितने रूपों में विद्यमान हैं, फिर भी आपके स्वयं के अवतार कपिलदेव जैसे मुनियों ने इस विराट जगत में चौबीस तत्त्व निश्चित किये हैं। अतः यदि कोई सांख्य दर्शन में रुचि रखता है, तो उसे चाहिए कि विभिन्न सत्यों को वह आपसे सुने।

दुर्भाग्यवश जो आपके भक्त नहीं हैं, वे केवल तत्त्वों की गणना कर पाते हैं, किन्तु आपके वास्तविक रूप से अनजान रहते हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : लाखों-करोड़ों वर्षों से दार्शनिक तथा वैज्ञानिक सम्पूर्ण विश्व-स्थिति का भिन्न-भिन्न तरीकों से सिद्धान्त बनाने और करने का प्रयास करते रहे हैं, किन्तु नामधारी वैज्ञानिक या दार्शनिक की काल्पनिक शोध उसकी मृत्यु के साथ ही अवरुद्ध हो जाती है और प्रकृति के नियम उसके कार्य से प्रभावित हुए अबाध गति से चलते रहते हैं।

भौतिक सृष्टि में अरबों वर्षों तक परिवर्तन होते रहने के बाद सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विलीन हो जाता है और अप्रकट हो जाता है। प्रकृति में परिवर्तन तथा विनाश (भूत्वा भूत्वा प्रलीयते) अनवरत् रूप से चलते रहते हैं। तो भी संसारी विज्ञानीजन प्रकृति के मूलाधार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जाने बिना प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करना चाहते हैं। भगवद्गीता (९.१०) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

“हे कुन्तीपुत्र! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और सम्पूर्ण चर और अचर प्राणियों को रचती है। इसी कारण इस जगत का बारम्बार सृजन और संहार होता है।”

सृष्टि की भौतिक अभिव्यक्ति हो जाने पर अन्ततः इसका संहार होगा और लाखों वर्षों तक सुसुप्त स्थिति रहने के पश्चात् पुनः सृष्टि होगी। यही प्रकृति का नियम है।

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान्यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह
कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति. ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

उत्तरेषु—उत्तर दिशा में; च—भी; कुरुषु—कुरुवर्ष में; भगवान्—श्रीभगवान्; यज्ञ-पुरुषः—समस्त यज्ञों के फल को स्वीकार करने वाला; कृत-वराह-रूपः—शूकर (वराह) रूप को धारण करके; आस्ते—शाश्वत विद्यमान रहता है; तम्—उसको; तु—निश्चयपूर्वक; देवी—देवी; ह—निश्चय ही; एषा—यह; भूः—पृथ्वी लोक; सह—के साथ; कुरुभिः—कुरु-देश के वासी; अस्खलित—स्खलित न होने वाली; भक्ति-योगेन—भक्ति के द्वारा; उपधावति—पूजा करता है; इमाम्—इस; च—भी; परमाम् उपनिषदम्—श्रेष्ठतम उपनिषद् (भगवान् तक पहुँचने की विधि) को; आवर्तयति—अभ्यास हेतु बारम्बार जप करता है।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, हे राजन्, सभी यज्ञाहुतियों को स्वीकार करने वाले श्रीभगवान् वराह रूप में जम्बूद्वीप के उत्तरी भाग में निवास करते हैं। वहाँ उत्तर-कुरुवर्ष में पृथ्वी माता तथा

अन्य सभी वासी निम्नलिखित उपनिषद् मंत्र का बारम्बार जप करते हुए उनकी आराधना करते हैं।

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते. ॥ ३५ ॥ ।

शब्दार्थ

ओम्—हे प्रभो; नमः—नमस्कार; भगवते—श्रीभगवान् को; मन्त्र-तत्त्व-लिङ्गाय—जो विभिन्न मंत्रों द्वारा समझे जाते हैं; यज्ञ—पशु-बलि के रूप में; क्रतवे—तथा पशुबलि; महा-ध्वर—बड़ी-बड़ी बलियाँ; अवयवाय—जिनके शरीर के अंग; महा-पुरुषाय—परमात्मा को; नमः—नमस्कार; कर्म-शुक्लाय—जो जीवात्माओं के कर्मों को पवित्र करने वाला है; त्रि-युगाय—तीन युगों में छः ऐश्वर्यों के साथ प्रकट होने वाले श्रीभगवान् (चतुर्थ युग में प्रच्छन्न रहने वाले) को; नमः—नमस्कार; ते—आपको।

हे प्रभो, हम विराट पुरुष के रूप में आपको सादर नमस्कार करते हैं। केवल मंत्रोच्चार से हम आपको पूर्णतः समझ सकते हैं। आप यज्ञरूप हैं, आप क्रतु हैं। अतः यज्ञ के सभी अनुष्ठान आपके दिव्य शरीर के अंशरूप हैं और केवल आप ही समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। आपका स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त है। आप 'त्रियुग' कहलाते हैं, क्योंकि कलियुग में आपने प्रच्छन्न अवतार लिया है और आप छहों ऋद्धियों के स्वामी हैं।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु इस कलियुग के लिए अवतार हैं, जैसाकि पुराणों, महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा अन्य उपनिषदों में अनेक स्थलों में पुष्टि हुई है। उनके आविर्भाव का विवरण चैतन्यचरितामृत (मध्यलीला ६.९९) में निम्न प्रकार मिलता है—

कलियुगे लीलावतार ना करे भगवान् ।

अतएव 'त्रियुग' करि' कहि तार नाम ॥

इस कलिकाल में श्रीभगवान् लीलावतार के रूप में, लीलाओं के प्रदर्शनार्थ प्रकट नहीं होते। इसलिए वे त्रियुग कहलाते हैं। अन्य अवतारों के विपरीत श्री चैतन्य महाप्रभु कलिकाल में श्रीभगवान् के भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए उन्हें छत्रावतार कहा जाता है।

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो

गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।

मश्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो

गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; स्व-रूपम्—स्वरूप; कवयः—महान् सन्तः; विपश्चितः—परम सत्य को सुनिश्चित करने में पटु; गुणेषु—तीन गुणों से युक्त भौतिक जगत में; दारुषु—काष्ठ में; इव—सदृश; जात—प्रकट; वेदसम्—अग्नि; मश्नन्ति—मथते हैं; मथ्ना—अरणी या मथानी से उत्पन्न अग्नि; मनसा—मन के द्वारा; दिदृक्षवः—उत्सुकजन; गूढम्—छिपे; क्रिया-अर्थः—कर्मों तथा उनके फलों के द्वारा; नमः—नमस्कार है; ईरित-आत्मने—प्रकट होने वाले प्रभु को।

ऋषि तथा मुनि काठ में छिपी अग्नि को अरणी के द्वारा उत्पन्न कर सकने में समर्थ हैं। हे प्रभो, परम सत्य को समझने में दक्ष ऐसे व्यक्ति आपको प्रत्येक वस्तु में, यहाँ तक कि अपने शरीर में भी देखने का प्रयास करते हैं किन्तु आप फिर भी अप्रकट रहते हैं। मानसिक या भौतिक क्रियाओं जैसी अप्रत्यक्ष विधियों से आपको नहीं समझा जा सकता। आप स्वतः प्रकट होने वाले हैं, अतः जब आप देख लेते हैं कि कोई व्यक्ति सर्वभावेन आपकी खोज में संलग्न है तभी आप अपने को प्रकट करते हैं। अतः मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य : क्रियार्थः शब्द का अर्थ है, “देवताओं को प्रसन्न करने के निमित्त अनुष्ठानों द्वारा।”
 विपश्चितः शब्द की व्याख्या तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार दी गई है—*सत्यं-ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।* जैसाकि श्रीकृष्ण भगवद्गीता (७.१९) में कहते हैं—*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते—*“बहुत जन्मांतरों के अन्त में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष मुझे सब कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है।” जब मनुष्य को यह बोध हो जाता है कि भगवान् सबके हृदयों में विद्यमान हैं और जब वह भगवान् को वास्तव में कण-कण में उपस्थित देखता है, तो वह पूर्ण ज्ञानी होता है। *जातवेदः* शब्द का तात्पर्य है, “वह अग्नि जो काष्ठ के रगड़ने से उत्पन्न होती है।” वैदिक युग में ऋषियों द्वारा काष्ठ से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। *जातवेदः* का अर्थ जठराग्नि भी होता है जो हमारे खाए हुए भोजन को पचाने वाली और भूख उत्पन्न करने वाली होती है। *गूढ* शब्द की विवेचना *श्वेताश्वतर उपनिषद्* में की गई है। *एको देवः सर्वभूतेषु गूढः—*वैदिक मंत्रों के जाप से ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जाना जा सकता है। *सर्वव्यापी सर्व-भूतान्तरात्मा—*वह सर्वव्यापी है और प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में स्थित है। *कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः—*वह जीवात्मा के सभी व्यापारों का साक्षी है। *साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च—*परमात्मा साक्षी होने के साथ-साथ जीवनी शक्ति भी हैं, तो भी वह समस्त भौतिक गुणों से परे हैं।

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-

र्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।

अन्वीक्षयाद्भातिशयात्मबुद्धिभि-

निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

द्रव्य—इन्द्रियसुख के पदार्थों द्वारा; क्रिया—इन्द्रियों का व्यापार; हेतु—इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता; अयन—शरीर; ईश—प्रबल काल; कर्तृभिः—झूठे अहंकार से; माया-गुणैः—भौतिक प्रकृति के गुणों द्वारा; वस्तु—तथ्य स्वरूप; निरीक्षित—निरीक्षण किया जाकर; आत्मने—परमात्मा को; अन्वीक्षया—अत्यन्त विचार करके; अङ्ग—योगसाधना के अंगों द्वारा; अतिशय-आत्म-बुद्धिभिः—जिनकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है उनके द्वारा; निरस्त—पूर्णतया मुक्त; माया—माया; आकृतये—जिनकी आकृति (रूप); नमः—नमस्कार; नमः—नमस्कार है।

भौतिक सुख के साधन (शब्द, गन्ध, रूप, स्पर्श, स्वाद), ऐन्द्रिय कर्म, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, शरीर, अनन्त काल तथा अहंकार—ये सभी आपकी माया से उत्पन्न हैं। जिन्होंने योग के द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर कर लिया है वे यह देख सकते हैं कि ये सभी तत्त्व आपकी माया के ही परिणाम हैं। वे आपके दिव्य रूप को भी प्रत्येक वस्तु की पृष्ठ भूमि में परम आत्मा के रूप में देख सकते हैं। अतः मैं पुनः पुनः आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भौतिक सुख के साधन, मानसिक क्रियाएँ, इन्द्रियसुख के प्रति लगाव, शरीर, मिथ्या अहंकार इत्यादि सभी भगवान् की माया से उत्पन्न हैं। इन सब कार्यों का आधार जीवात्मा है और जीवात्माओं के संचालक हैं परमात्मा। जीव सर्वेसर्वा नहीं होता। वह परमात्मा द्वारा निर्देशित होता है। भगवद्गीता (१५.१५) में श्रीकृष्ण इस की पुष्टि करते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—“मैं सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान और विस्मृति होती है।” जीव निर्देशों के लिए परमात्मा पर निर्भर करता है। आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त व्यक्ति अथवा योगक्रिया (यमनियमासनादि) में पटु व्यक्ति ही सत्त्व को परमात्मा या श्रीभगवान् के रूप में जान सकता है। परमेश्वर ही सभी प्राकृतिक घटनाओं के मूल कारण हैं। अतः उन्हें *सर्वकारण-कारणम्*—सभी कारणों का कारण—बताया गया है। हमें जो कुछ भी दिखाई पड़ता है उसका कुछ न कुछ कारण है और जो कोई समस्त कारणों के मूल कारण, श्रीकृष्ण, को देख सकता है, वही वास्तव में देख सकता है। सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ही प्रत्येक वस्तु की पृष्ठभूमि में हैं, जैसाकि *भगवद्गीता* (१.१०) में वे स्वयं इसकी पुष्टि करते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

“हे कुन्तीपुत्र! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है और यह सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को रचती है। इसी कारण इस जगत का बारम्बार सृजन और संहार होता है।”

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं
ग्राव्यो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

करोति—करता है; विश्व—ब्रह्मांड की; स्थिति—भरण; संयम—विलोप; उदयम्—सृष्टि; यस्य—जिसका; ईप्सितम्—वांछित; न—नहीं; ईप्सितम्—वांछित; ईक्षितुः—ऊपर से देखने वाले का; गुणैः—गुणों के द्वारा; माया—माया; यथा—जितना; अयः—लोहा; भ्रमते—भ्रमण करता है; तत्-आश्रयम्—उसके निकट स्थित; ग्राव्यः—चुम्बक पत्थर; नमः—नमस्कार; ते—आपको; गुण-कर्म-साक्षिणे—भौतिक प्रकृति की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के साक्षी।

हे प्रभो, आप इस भौतिक जगत की सृष्टि, पालन या संहार के इच्छुक नहीं हैं, किन्तु बद्धजीवों के लिए अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा इन क्रियाओं को निष्पादित करते हैं। जिस प्रकार चुम्बक-पत्थर के प्रभाव से लोहे का टुकड़ा घूमता है ठीक उसी प्रकार जब आप समस्त माया पर दृष्टि फेरते हैं, तो सारे जड़ पदार्थ गति करने लगते हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी मन में यह प्रश्न उठता है कि भगवान् ने जीवों के लिए अनेक प्रकार के कष्टों से पूर्ण इस भौतिक जगत की सृष्टि क्यों की है। यहाँ यह उत्तर दिया गया है कि श्रीभगवान् जीवों को कष्ट भोगने मात्र के लिए भौतिक जगत की सृष्टि नहीं करना चाहते। परमेश्वर तो बद्धआत्माओं के सुख-भोग के लिए इसकी सृष्टि करते हैं।

प्रकृति के कार्यकलाप स्वतः नहीं चलते रहते। प्रकृति (माया) पर भगवान् की दृष्टि पड़ने से ही प्रकृति उसी प्रकार आश्चर्यजनक तरीके से कार्यशील हो जाती है, जिस प्रकार कि चुम्बक पत्थर के कारण लोहे के टुकड़े इधर-उधर घुमने लगते हैं। चूँकि भौतिकतावादी विज्ञानी तथा नामधारी सांख्य दार्शनिक ईश्वर में विश्वास नहीं करते, इसलिए वे प्रकृति को बिना किसी अधीक्षक के कार्यशील होती मानते हैं। किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है। चैतन्यचरितामृत (आदि ६.१८-१९) में भौतिक जगत की उत्पत्ति की व्याख्या इस प्रकार दी गई है—

यद्यपि सांख्य माने, 'प्रधान'—कारण।

जड़ हड़ते कभु नहे जगत-सृजन ॥

निज सृष्टिशक्ति प्रभु संचारे प्रधाने ।

ईश्वरेर शक्त्ये तबे हये त' निर्माणे ॥

“नास्तिक सांख्य दार्शनिक सोचते हैं कि समग्र भौतिक शक्ति से विराट जगत की सृष्टि होती है, किन्तु वे गलती पर हैं। जड़ पदार्थ में गति करने की शक्ति नहीं होती, अतः यह स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता। भगवान् अपनी सृजन शक्ति का भौतिक अवयवों में संचार करते हैं। तब भगवान् की शक्ति से द्रव्य गति करता है और परस्पर क्रिया करता है।” सागर की तरंगें वायु द्वारा गतिशील होती हैं, वायु का सृजन आकाश से होता है और प्रकृति के त्रिगुणों के विक्षोभ से आकाश की उत्पत्ति होती है तथा वे त्रिगुण समग्र भौतिक शक्ति (माया) पर भगवान् की कृपादृष्टि से परस्पर क्रिया करते हैं। अतः सभी प्राकृतिक घटनाओं के मूलाधार श्रीभगवान् ही हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है (*मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। इसकी व्याख्या *चैतन्यचरितामृत* (आदि ५.५९-६१) में भी की गई है—

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़रूपा ।

शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा ॥

कृष्णशक्त्ये प्रकृति हय गौण कारण ।

अग्निशक्तये लौह यैछे करये जारण ॥

अतएव कृष्ण मूल-जगत्कारण ।

प्रकृति—कारण यैछे अजागलस्तन ॥

“चूँकि प्रकृति जड़ रूप है, अतः यह भौतिक जगत का वास्तविक कारण नहीं हो सकती। भगवान् श्रीकृष्ण जड़ प्रकृति में अपनी शक्ति का संचार करके अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण की शक्ति से प्रकृति गौण कारणस्वरूप है, जिस प्रकार से लोहा अग्नि की शक्ति से लाल होता है। अतः श्रीकृष्ण इस विराट जगत के मूल कारण हैं। प्रकृति बकरी के उस गलस्तन के तुल्य है, जिसमें से दूध नहीं निकलता।” इस तरह वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों की यह भारी भूल है कि वे पदार्थ (जड़) को स्वतंत्र रूप से गतिशील मानते हैं।

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे

यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।

कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः

क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

प्रमथ्य—वध करके; दैत्यम्—असुर को; प्रतिवारणम्—अत्यन्त शक्तिशाली प्रतियोगी; मृधे—युद्ध में; यः—वह जो; माम्—मुझको (पृथ्वी); रसायाः—रसातल में पड़ी हुई; जगत्—इस भौतिक जगत में; आदि-सूकरः—आदिसूकर रूप; कृत्वा—धारण करके; अग्र-दंष्ट्रे—दाँतों के अग्रभाग में; निरगात्—जल के बाहर लाया; उदन्वतः—गर्भोदक सागर से; क्रीडन्—खेलते हुए; इव—समान्, सदृश; इभः—हाथी; प्रणता अस्मि—मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ; तम्—उसको; विभुम्—भगवान् को; इति—इस प्रकार ।

हे प्रभो, इस ब्रह्माण्ड में आदि सूकर रूप में आपने हिरण्याक्ष दैत्य के साथ युद्ध करके उसका संहार किया। फिर आपने अपने दाढ़ों के अग्र भाग से मुझ पृथ्वी को गर्भोदक सागर से उसी प्रकार ऊपर उठा लिया जैसे क्रीडारत गज जल में से कमल-पुष्प तोड़ लेता है। मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “जम्बूद्वीप के निवासियों द्वारा भगवान् की स्तुति” नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।